लॉरी बेकर

(1917 - 2007)

मैं कभी उच्च-आय, मध्यम-आय या निम्न-आय वर्ग, आदिवासी या मछुआरों के लिए घर नहीं बनाता हूँ। मैं केवल किसी मैथ्यू, किसी भास्करन, किसी मुनीर या किसी शंकरन के लिए घर बनाता हूँ।

– लॉरी बेकर

लॉरी बेकर एक विलक्षण वास्तुशिल्पी थे जिन्होंने गरीबों की ज़िन्दगी को छुआ। उन्होंने लोगों की वास्तविक ज़रूरतों को ध्यान में रखकर किफायती, कम ऊर्जा खपत वाले, वातावरण के अनुकूल और सुन्दर मकान बनाए।

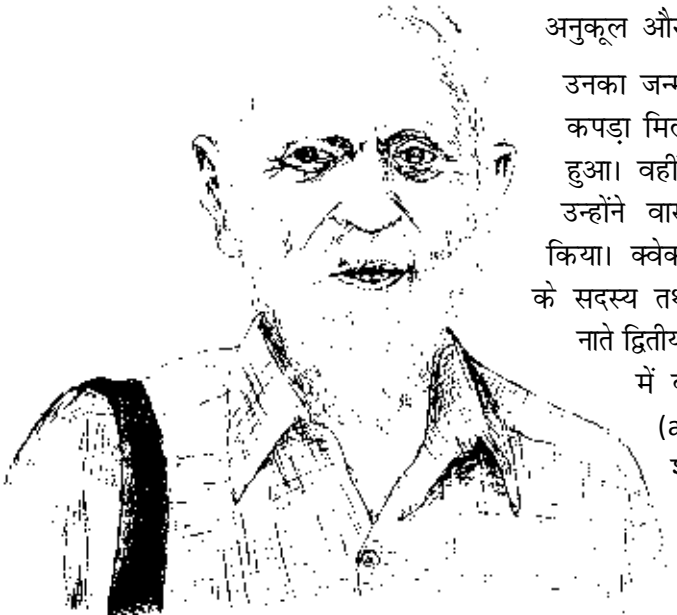

उनका जन्म 1917 में इंग्लैण्ड के कपड़ा मिलों के शहर बर्मिंघम में हुआ। वहीं पर वे बड़े हुए और उन्होंने वास्तुशिल्प का अध्ययन किया। क्वेकर (Quaker) समुदाय के सदस्य तथा शान्तिवादी होने के नाते द्वितीय विश्वयुद्ध की शुरुआत में वे एक चल-अस्पताल (ambulance unit) में शामिल हो गए। उसके

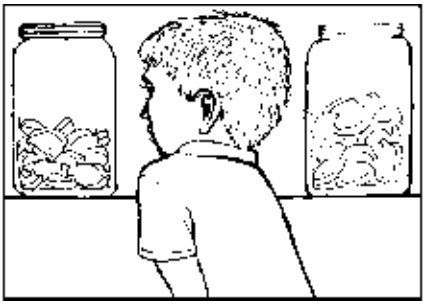

पैसों के असली मूल्य और मितव्ययिता का महत्व बेकर ने बचपन में ही सीख लिया था। छुटपन में वे अपना जेबखर्च स्थानीय बेकरी से बिस्कुट खरीदने में लगा देते थे। पर उन्हें जल्द ही पता चल गया कि वे उतने ही पैसों में साबुत बिस्कुटों की बजाय दोगुनी मात्रा में टूटे बिस्कुट खरीद सकते थे। और टूटे बिस्कुट खाने में साबुत बिस्कुटों जितने ही स्वादिष्ट होते! यह सबक बेकर जीवन भर नहीं भूले!

बाद युद्ध के दौरान अधिकांश समय चीन में एक स्वास्थ्य-कर्मी के रूप में काम करते रहे। इंग्लैण्ड वापस जाते वक्त उन्हें कुछ महीने बम्बई में बिताने पड़े जहाँ कुछ क्वेकर मित्र उन्हें एक दिन गाँधीजी से मिलाने ले गए। गाँधीजी ने जब बेकर की हाथ से बनाई कपड़े की चप्पल देखी तो उन्हें बहुत अचरज हुआ। गाँधीजी ने उनको समझाया कि भारत को उनके कौशल और विशेषज्ञता की सख्त ज़रूरत थी। इसलिए गाँधीजी ने बेकर से स्थाई रूप से भारत में रहने का आग्रह किया।

गाँधीजी की प्रेरणा से बेकर कुछ महीनों बाद भारत लौट आए और कुष्ठ-रोगियों के इलाज के लिए उपचार केन्द्र बनाने लगे। 1948 में उन्होंने डॉक्टर एलिज़ाबेथ जेकब से शादी की, जो वेल्लोर के प्रसिद्ध क्रिश्चियन मेडिकल कॉलेज में कार्यरत थीं। उसके बाद यह दम्पत्ति पिथौरागढ़ (उत्तराखण्ड) के एक सुदूर गाँव में जाकर बसा और वहाँ उन्होंने एक अस्पताल शुरू किया। एलिज़ाबेथ अस्पताल में एकमात्र चिकित्सक थीं। अस्पताल का बाकी सारा काम बेकर करते। जब अमरीकी शिक्षाविद् वेल्टी फिशर ने लखनऊ में साक्षरता भवन स्थापित करने की योजना बनाई तो उन्हें बताया गया कि भारत में सिर्फ एक वास्तुशिल्पी है जो उनके सपनों को नक्शे पर उतार पाएगा। बेकर ने लखनऊ में मानसिक रोगियों के प्रथम अस्पताल नूर मंज़िल का भी आकल्पन किया।

लॉरी बेकर व एलिज़ाबेथ

साठ के दशक के अन्त में बेकर अपनी पत्नी के गृहप्रदेश केरल आ गए और तिरुवनन्तपुरम में बस गए। बेकर ने 50 साल की उम्र के बाद ही पूर्णकालिक वास्तुशिल्पी के रूप में काम शुरू किया। बेकर ने पारम्परिक भारतीय उस्ताद कारीगर की तरह काम करना शुरू किया। यानी वे इमारतों का आकल्पन भी करते थे और उनका निर्माण भी करते थे। बेकर ने कभी किसी कार्यालय या सहायक की मदद नहीं ली। वे अक्सर पुराने कागज़ के टुकड़ों पर घरों के नक्शे बनाते और निर्माण स्थल पर ही डिज़ाइन बनाते। अधिकतर वास्तुशिल्पी केवल कागज़ पर रेखाएँ बना पाते हैं। लेकिन बेकर एक कुशल मिस्त्री और बढ़ई भी थे। उनकी सभी परियोजनाओं का कार्यभार कोई इंजीनियर नहीं, बल्कि मिस्त्रियों का एक समूह सम्हालता था जिन्हें वे खुद प्रशिक्षित करते थे। ठेकेदारों और दलालों को दरकिनार कर खुद निर्माण करने से निर्माण की कीमत बहुत कम हो जाती थी। बेकर पर्यावरण के प्रति बहुत संवेदनशील थे। इसलिए बहुत अधिक ऊर्जा से बने लोहे और सीमेंट जैसी सामग्री का वे कम उपयोग करते थे। वे हमेशा कहते, "उम्र में सीमेंट मुझसे छोटा है।" इस बात में सच्चाई थी, क्योंकि प्रथम विश्वयुद्ध के बाद ही सीमेंट बड़े पैमाने पर इस्तेमाल होना शुरू हुआ था।

हिमालय में अपने लम्बे प्रवास के दौरान बेकर को परम्परागत भारतीय वास्तुशिल्प की बारीकियाँ समझ में आईं। यहाँ हज़ारों सालों के व्यावहारिक शोध के बाद लोगों ने ऊर्जा बचाने वाले मकान बनाने के तरीकों में दक्षता हासिल की थी। पहाड़ पर लोग स्थानीय पत्थरों और लकड़ी से मकान बनाते हैं। यह सामान घर से 100–200 गज़ की दूरी पर ही मिल जाता है। यह देखकर बेकर को गाँधीजी की यह बात याद आई कि घर बनाने का सारा सामान निर्माण–स्थल से पाँच मील के दायरे से ही आना चाहिए।

ईंट के टुकड़े (COB) ऊँचाई के अलावा हर काम के लिए उपयोगी होते हैं। ये वक्र या गोल दीवारों के लिए खासतौर पर उपयोगी हैं।

दबाकर तैयार की गई मिट्टी काफी मज़बूत होती है और ठोस, कम ऊँचाई वाले एक मंज़िला घरों के लिए अच्छी होती हैं।

धूप में सुखाई गई ईंटों (ADOBE) से आसानी से दो-मंज़िला घर बनाए जा सकते हैं।

दबाकर और भट्ठी में बनाई गई ईंटों से तीन-मंजिली इमारतें भी बनाई जा सकती है।

बाँस, बेंत या लकड़ी की जाली पर मिट्टी, रेत और गोबर की लिपाई से बनी दीवारें (Wattle & Daub) बहुत सुन्दर दिखती हैं। ये खासतौर पर भूकम्प वाले इलाकों के लिए अच्छी रहती हैं।

बेकर इस सिद्धान्त का पूरी तरह पालन नहीं कर पाते थे परन्तु वे इसके काफी करीब आ गए थे। वे लोहे और काँच दोनों के उपयोग के बहुत खिलाफ थे क्योंकि इनके बनाने में बहुत ऊर्जा व्यय होती है। परन्तु वे अक्सर अपने बनाए घरों में काँच की रंगीन बोतलों को दीवारों में धँसा देते। इससे घर में रंग-बिरंगी रोशनी फैल जाती। ईंटों से बेकर को विशेष प्रेम था। वे ईंटों को रैट-ट्रैप बन्धन (Rat-trap bonds/चूहेदानी शैली) में सजाते। इस तरह वे ऊष्मा निरोधी दीवार बना पाते और साथ ही 25 प्रतिशत ईंटों की बचत भी कर लेते। ईंटों से बनाई उनकी जालियाँ घर में ठण्डी बयार लातीं तो छत में बने झरोखे अन्दर की गर्म हवा को बाहर ढकेलते। वे ईंटों को आपस में जोड़ने के लिए चूने का गारा उपयोग करते। केरल में समुद्र की सीपियों से निर्माण स्थल पर ही चूना बनाना सम्भव था। बेकर ने छत निर्माण में लोहे की जगह बाँस का उपयोग कर खर्च में 80 प्रतिशत कटौती की। वैसे निर्माण के लिए बेकर की सबसे प्रिय वस्तु मिट्टी थी, जिसे बनाने में शून्य ईंधन लगता और जो आसपास बिलकुल

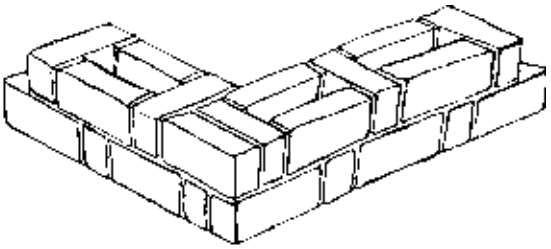

रैट-ट्रैप बन्धन से 25 प्रतिशत ईंटें बचती हैं और हवा की तहें इमारत के लिए ऊष्मारोधक का कार्य करती है।

मुफ्त में मिल जाती। उन दिनों भारत में 58 प्रतिशत घर मिट्टी के ही बने होते थे। हर प्रकार के मौसम की मार झेलते हुए वे सैकड़ों साल खड़े रहते थे। मिट्टी की एक और खासियत है – उसे बार-बार इस्तेमाल किया जा सकता है। आप मिट्टी के अपने मकान को ढहाकर और उसमें पानी मिलाकर नया मकान बना सकते हैं। काँच और लोहे से ऐसा करना सम्भव नहीं है।

बेकर ने हज़ारों सालों की जाँची-परखी निर्माण सामग्री, कुशलताओं और डिज़ाइनों का उपयोग कर आरामदेह मकान और कार्यालय बनाए। इनमें बिजली, पानी और कई बार गैरिज की सुविधा भी थी। बेकर का मानना था कि "वास्तुशिल्प एक महत्वपूर्ण विषय है और उसे सिर्फ वास्तुशिल्पी के भरोसे नहीं छोड़ा जाना चाहिए।" उन्होंने कम कीमत के भवन निर्माण पर एक दर्जन से अधिक सचित्र पुस्तकें लिखीं, जैसे – *हाऊ टू रिड्यूस*

बिल्डिंग कॉस्ट (सस्ते मकान कैसे बनाएँ), रबिश (कचरा) और *मड (मिट्टी)*। इन पुस्तकों के लिए उन्होंने खुद चित्र बनाए। उनकी अनेक पुस्तकों का कई भारतीय भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। उनकी बाद के वर्षों में लिखीं दो पुस्तकें, *रूरल कम्यूनिटी बिल्डिंग्स (ग्रामीण सामुदायिक इमारतें)* और *कॉस्ट रिडक्शन फॉर प्राइमरी स्कूल बिल्डिंग्स (कम कीमत की प्राथमिक शाला इमारतें)* का प्रकाशन बेकर की 80वीं वर्षगाँठ पर हुआ। बेकर द्वारा डिज़ाइन की गई दो उल्लेखनीय इमारतें हैं – तिरुवनन्तपुरम में विकास अध्ययन केन्द्र की इमारत और वहीं के बस स्टैण्ड के पास स्थित एक छोटा-सा कॉफी हाउज़।

चीज़ों का दुबारा इस्तेमाल करना बेकर की प्रकृति का अंग था। गुसलखाना बनाते समय वे काँच और टाइलों के टूटे टुकड़ों का उपयोग करते। वे कंकरीट की छत की ढलाई करते समय हर एक-दो फुट की दूरी पर सैकड़ों टूटी टाइलें धँसा देते। इस प्रकार टूटी हुई टाइलों के उपयोग से कंकरीट की ज़रूरत 30 प्रतिशत कम हो जाती है। वे चाहते थे कि उनकी बनाई इमारतें केरल के लहलहाते नारियल के पेड़ों की ऊँचाई से सदैव नीची रहें।

बेकर केवल एक वास्तुशिल्पी नहीं थे। उन्होंने ज़िन्दगी को पूर्ण रूपेण अंगीकार किया और समय-समय पर डॉक्टर, मिशनरी, माली, बावर्ची, किसान, पशु-चिकित्सक, एम्बुलेंस ड्राइवर, बढ़ई, राजमिस्त्री, कवि और व्यंग्य-चित्रकार की भूमिका निभाई।

बेकर को कई विश्वविद्यालयों ने डॉक्टरेट की डिग्री से अलंकृत किया। ब्रिटिश सरकार ने उन्हें मेम्बर ऑफ द ब्रिटिश एम्पायर तथा ऑर्डर ऑफ द एम्पायर से सम्मानित किया। 1990 में संयुक्त राष्ट्र संघ का पहला हैबिटैट अवॉर्ड और यू.एन. रोल ऑफ ऑनर से लॉरी बेकर को सुशोभित किया गया। बेकर कई महत्वपूर्ण सरकारी समितियों के सदस्य भी रहे। 1990 में भारत सरकार ने उन्हें पद्मश्री से सम्मानित किया। परन्तु उनको सबसे अधिक खुशी तब हुई जब 1988 में उन्हें भारतीय नागरिकता मिली। बेकर और उनकी पत्नी एलिज़ाबेथ ने तीन बच्चों को गोद लिया – बेटा तिलक व बेटियाँ विद्या और हाइडी।

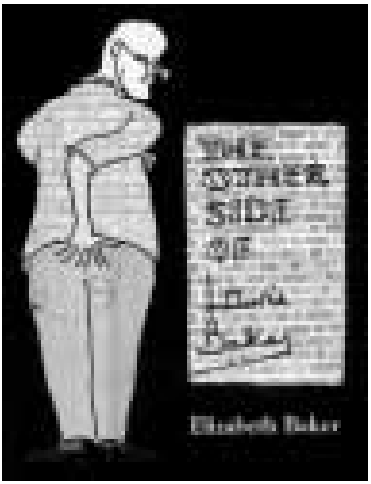

अपना खुद का मकान 'हैमलेट' बनाते हुए भी लॉरी बेकर ने वही सिद्धान्त इस्तेमाल किए जिनका प्रचार उन्होंने जीवन भर किया। सही मायने में उनका जीवन ही उनका सन्देश था। 1 अप्रैल 2007 को मूर्ख दिवस वाले दिन अपने घर पर ही बेकर ने प्राण त्यागे। उस वक्त उनकी उम्र 90 वर्ष थी। मृत्यु में भी उन्होंने अपने टीकाकारों को नहीं बख्शा। उनके घर का नाम था हैमलेट, और उसके निर्माता के रूप में उन्हें अपनी भूमिका या अस्मिता – होऊँ या न होऊँ – के बारे में कोई शक नहीं रहा था। अन्त में, हम शेक्सपियर द्वारा लिखे मार्क एंटनी के इस वाक्य का बेकर के अन्दाज़ में तर्जुमा कर सकते हैं: "यह था एक बेकर! दूसरा कब आता है मुड़कर?"

अन्ना मणि

(1918 - 2001)

जिन बहादुर महिलाओं को मैं जानती थी
वे अब बूढ़ी हो चली हैं।
उनमें से प्रत्येक एक वृक्ष या प्रकाश-स्तम्भ जैसी थी,
या फिर प्रकाश-स्तम्भ के इर्द-गिर्द मँडराती
समुद्री चील जैसी,
या फिर समुद्री चील के चहुँ ओर घूमती
डॉल्फिन मछली जैसी,
जो प्रकाश-स्तम्भ के चक्कर काटती है
जैसे मेरे विचार अपने-आप ही मँडरा रहे हैं।

– सुनीति नामजोशी द्वारा अन्ना मणि को श्रद्धांजलि

1950 के दशक में जब होमी भाभा देश में आण्विक ऊर्जा का ताना-बाना बुन रहे थे, उस समय अन्ना मणि की नारीवादी संवेदनाएँ सौर व पवन ऊर्जा की सम्भावनाएँ तलाश रही थीं। स्वतंत्र भारत में मणि ने मौसम विज्ञान के क्षेत्र में अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान दिया।

अन्ना मोडियाल मणि का जन्म

1913 में जब अन्ना मणि का जन्म हुआ तब भारत में महिलाओं की साक्षरता दर एक प्रतिशत से भी कम थी। देश के सभी महाविद्यालयों में कुल मिलाकर 1,000 से भी कम छात्राएँ थीं। यहाँ तक कि 1930 में भी जब मणि कॉलेज में थीं, महिलाओं के लिए विज्ञान शिक्षण के बहुत कम अवसर थे। तब यह मान्यता थी कि महिलाओं की शिक्षा उन्हें सिर्फ एक अच्छी माँ और गृहणी बनाने के लिए ही होनी चाहिए।

23 अगस्त 1918 को केरल स्थित पीरमेडू में हुआ। उनके पिता इलायची के एक बड़े बाग के मालिक थे। सीरियाई ईसाई परिवार में पैदा होने के बावजूद वे अनीश्वरवादी थे। अन्ना को पुस्तकें पढ़ने का ज़बरदस्त चस्का था और 12 वर्ष की अल्पायु तक वे स्थानीय पुस्तकालय की सभी पुस्तकें पढ़ चुकी थीं। अपने आठवें जन्म-दिवस पर उन्होंने हीरे के कुण्डलों को नकारकर उन पैसों से *इंसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका* (*Encyclopaedia Britannica*) खरीदा। पुस्तकों ने अन्ना के लिए एक नई दुनिया खोल दी और किताबों से ही उन्होंने सामाजिक न्याय का सबक सीखा। 1925 में गाँधीजी उनके शहर में आए जिनका अन्ना पर गहरा प्रभाव पड़ा। अपनी बहनों की तरह अन्ना ने जल्दी शादी करने की बजाय उच्च शिक्षा प्राप्त करने की ठानी। सारी ज़िन्दगी अन्ना ने खादी ही पहनी।

वैसे तो अन्ना का इरादा डॉक्टर बनने का था परन्तु वे भौतिक विज्ञान में बहुत तेज़ थीं, इसलिए उन्होंने इसी विषय को चुना। उन्होंने मद्रास के प्रेसिडेंसी कॉलेज से भौतिक विज्ञान ऑनर्स की डिग्री प्राप्त की। कॉलेज के दिनों में समाजवादी विचारों के प्रति उनका रुझान बढ़ा। 1940 में उन्हें एक छात्रवृत्ति मिली जिसकी वजह से वे बैंगलोर स्थित भारतीय विज्ञान संस्थान में सी.वी. रामन के मार्गदर्शन में शोध कर पाईं। यहाँ उन्होंने हीरों और माणिक की वर्णक्रमिकी (spectroscopy) पर शोध किया। उन्हें उनकी प्रतिदीप्ति (fluorescence) और अवशोषण (absorption) के आँकड़ों को दर्ज करना होता था। इसके लिए उन्हें फोटोग्राफिक प्लेटों को 16-20 घण्टे तक प्रकाश में रखना पड़ता था। इसलिए वे अक्सर प्रयोगशाला में ही सो जाती थीं। अन्ना ने हीरों की सन्दीप्ति (luminescence) पर पाँच शोधपत्र

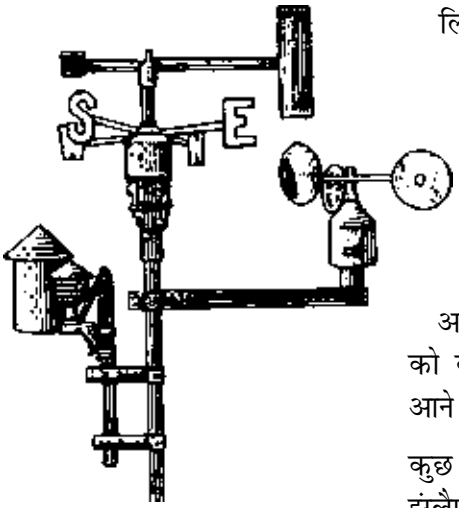

लिखे। 1945 में उन्होंने मद्रास विश्वविद्यालय को अपनी पीएच. डी. की थीसिस सौंपी। पर अन्ना ने एम.एससी. नहीं की थी इसलिए विश्वविद्यालय ने उन्हें पीएच.डी. की उपाधि प्रदान नहीं की। सौभाग्य से अन्ना मणि ने इस कागज़ी उपाधि को कभी भी अपने काम में आड़े आने नहीं दिया।

कुछ समय बाद अन्ना मणि को इंग्लैण्ड में उच्च शिक्षा के लिए एक सरकारी छात्रवृत्ति मिली। 1945 में एक सैनिक पोत में सवार होकर वे इंग्लैण्ड के इम्पीरियल कॉलेज में भौतिक विज्ञान सीखने गईं, परन्तु अन्त में उन्होंने मौसम-विज्ञान सम्बन्धी उपकरणों में विशेषज्ञता प्राप्त की। यहाँ उन्होंने मौसम सम्बन्धी उपकरणों, उनके अंशांकन (calibration) एवं मानकीकरण आदि की विस्तृत जानकारी हासिल की।

स्वतंत्रता के बाद भारत में अनेक सम्भावनाएँ खुलीं और अन्ना मणि ने इन चुनौतियों को स्वीकारा। 1948 में उन्होंने पुणे स्थित भारतीय मौसम विभाग के उपकरण खण्ड में काम शुरू किया। इस विभाग के प्रमुख एक दूरदर्शी और उत्साही व्यक्ति एस.पी. वेंकिटेश्वरन थे। 1947 से पहले मौसम विज्ञान सम्बन्धी सामान्य उपकरण, जैसे तापमापी और वायुदाबमापी भी विदेश से आयात होते थे। राष्ट्रवादी भावना से ओतप्रोत वेंकिटेश्वरन इन उपकरणों का निर्माण भारत में करना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने एक उच्च कोटि की कार्यशाला स्थापित की जहाँ वर्षामापी, तापमापी, हवा की गति आदि मापने के उपकरण बन सकें। उन्होंने तापलेखी (thermograph) और

जललेखी (hydrograph) जैसे उपकरणों के विकास के लिए शोधकार्य भी आरम्भ किया। अन्ना मणि इस सबसे बहुत प्रेरित हुईं। वे कम-से-कम समय में मौसम-विज्ञान के उपकरणों के उत्पादन में देश को आत्मनिर्भर बनाने के लिए अपनी विशेषज्ञता का उपयोग करना चाहती थीं।

यह काम इतना आसान नहीं था क्योंकि देश में परिष्कृत मशीनें चलाने वाले कुशल व्यक्तियों की बेहद कमी थी। परन्तु जो भी उपलब्ध था उससे मणि ने काम आगे बढ़ाने की ठानी। उन्होंने अपने विभाग के 121 लोगों को गुणात्मक कार्य करने के लिए प्रेरित किया। उनका नारा था: "काम करने की उत्तम पद्धति ढूँढो।" उन्होंने मात्रा की बजाय गुणवत्ता पर बल दिया। इस काम में उन्हें बहुत श्रम करना पड़ा परन्तु जल्द ही मणि ने भारतीय वैज्ञानिकों और इंजीनियरों का एक ऐसा ठोस समूह तैयार किया जो इस कार्य को करने के लिए तैयार था।

अन्ना मणि ने 100 से अधिक मौसम सम्बन्धी उपकरणों के रेखाचित्रों का मानकीकरण किया और उनका उत्पादन शुरू किया। मणि की सौर ऊर्जा में गहरी रुचि थी जिसे वे भारत जैसे गर्म देश के लिए बहुत अनुकूल मानती थीं। परन्तु उस समय देश में सौर ऊर्जा सम्बन्धी भौगोलिक और मौसमी जानकारी की बहुत कमी थी। 1957-58 के "अन्तर्राष्ट्रीय भू-भौतिक वर्ष" (International Geophysical year) में मणि ने देश में सौर विकिरण मापने के केन्द्रों का जाल बिछाया। इसके लिए शुरू में विदेशी उपकरणों का उपयोग किया गया परन्तु जल्द ही मणि ने उन्हें देश में डिज़ाइन करने और बनाने की व्यवस्था की।

मणि का मानना था कि गलत नाप से तो नाप न लेना ही बेहतर है। उन्होंने यह सुनिश्चित किया कि हरेक उपकरण का डिज़ाइन बढ़िया हो और उनका अंशांकन ठीक हो। 1960 में उन्होंने ओज़ोन का अध्ययन शुरू किया। उस समय यह शब्द इतना प्रसिद्ध नहीं था। यह बात दो दशकों बाद ही पता चली कि ओज़ोन

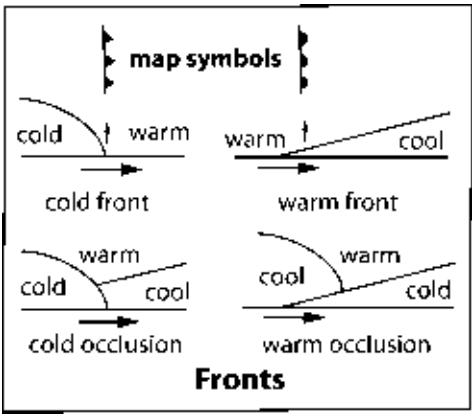

पृथ्वी की जीव सम्पदा को घातक किरणों से कैसे सुरक्षित रखती है। मणि ने ओज़ोन नापने का एक उपकरण 'ओज़ोनसोंडे' (ozonesonde) विकसित किया। इस उपकरण की वजह से भारत ओज़ोन सम्बन्धित विश्वसनीय तथ्यात्मक आँकड़े एकत्र कर पाया। मणि के महत्वपूर्ण योगदान के कारण उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय ओज़ोन आयोग (International Ozone Commission) का सदस्य मनोनीत किया गया।

1963 में विक्रम साराभाई के आग्रह पर मणि ने थुम्बा रॉकेट प्रक्षेपण स्थल पर मौसम की जानकारी एकत्रित करने के लिए एक वेधशाला और उपकरण मीनार (instrumentation tower) की स्थापना की। 1976 में अन्ना मणि भारतीय मौसम विभाग में उपमहानिदेशक के पद से सेवानिवृत्त हुईं। उसके बाद उन्होंने बैंगलोर के पास नन्दी हिल्स पर मिलीमीटर तरंग की एक दूरबीन स्थापित की। उनके द्वारा लिखी दो पुस्तकें – *हैंडबुक ऑफ सोलर रेडिएशन डेटा फॉर इण्डिया* (Handbook of Solar Radiation Data for India) (1980) और *सोलर रेडिएशन ओवर इण्डिया* (Solar Radiation over India) (1981) – अब सौर-ऊर्जा पर काम कर रहे इंजीनियरों के लिए मार्गदर्शक सन्दर्भ ग्रन्थ बन गई हैं। एक दूरदर्शी वैज्ञानिक होने के नाते उन्होंने भारत में पवन ऊर्जा की सम्भावनाओं को पहचाना और 700 स्थानों पर उत्कृष्ट उपकरणों की मदद से पवन सम्बन्धी आँकड़े एकत्रित किए। अगर आज भारत पवन ऊर्जा के क्षेत्र में छलाँग लगा रहा है तो इसका काफी श्रेय अन्ना मणि को जाता है।

कई सालों तक अन्ना मणि बैंगलोर में हवा की गति और सौर-ऊर्जा नापने के उपकरण बनाने वाली एक छोटी निजी कम्पनी की प्रमुख रहीं। उन्होंने

विवाह नहीं किया। उन्हें प्रकृति से बहुत लगाव था। पहाड़ों पर घूमना और पक्षी अवलोकन उनके शौक थे। वे कई शैक्षणिक संस्थाओं की सदस्य थीं, जैसे भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी, अमेरिकन मीटिरॅलॉजिकल सोसाइटी (American Meteorological Society) और इंटरनेशनल सोलर एनर्जी सोसाइटी (International Solar Energy Society)। 1987 में उन्हें भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी द्वारा के.आर. रामनाथन पदक से सम्मानित किया गया। 1994 में उन्हें पक्षाघात हुआ, जिसके बाद वे पलंग से नहीं उठ पाईं। 16 अगस्त 2001 में तिरुवनन्तपुरम में उनका देहान्त हो गया।

वी. रामालिंगास्वामी

(1921 - 2001)

प्रोफेसर वुलिमिरी रामालिंगास्वामी को सुप्रसिद्ध लीओन बर्नार्ड फाउंडेशन पुरस्कार से सम्मानित करते हुए 1976 में विश्व स्वास्थ्य सभा के अध्यक्ष सर हैरल्ड वॉल्टर ने उनकी प्रशंसा में कहा कि रामालिंगास्वामी "एक चिकित्सक, शोध-वैज्ञानिक, शिक्षक और मानववादी व्यक्ति हैं।" उनके बहुमुखी व्यक्तित्व का यह बिल्कुल सही चित्रण था।

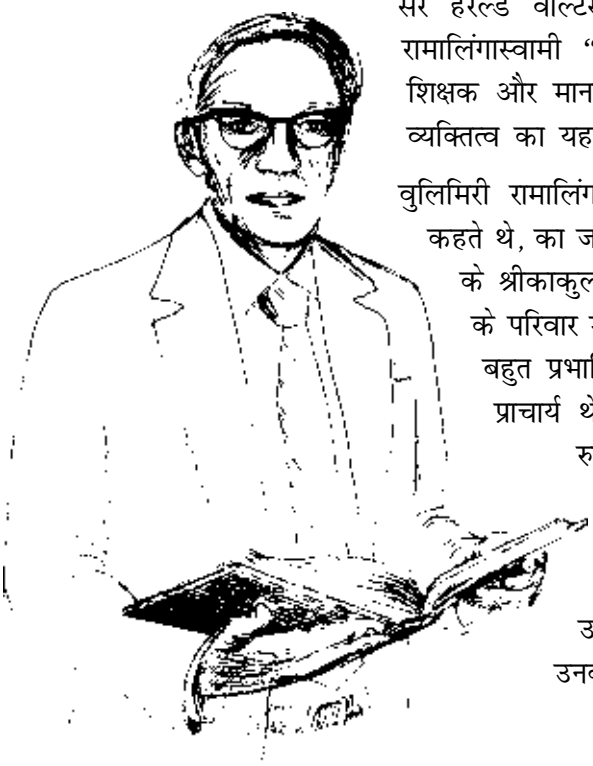

वुलिमिरी रामालिंगास्वामी, जिन्हें उनके मित्र 'रामा' कहते थे, का जन्म 8 अगस्त 1921 को आन्ध्र प्रदेश के श्रीकाकुलम में हुआ। उनका जन्म शिक्षाविदों के परिवार में हुआ था और वे अपने दादाजी से बहुत प्रभावित थे। दादाजी स्थानीय स्कूल के प्राचार्य थे और शेक्सपीयर में उनकी गहरी रुचि थी। रामा खुद एक अच्छे अभिनेता थे और उन्होंने महाविद्यालय में शेक्सपीयर के कई पात्रों की भूमिका निभाई थी। अपने अच्छे गायन से उन्होंने कई महफिलों में रंग जमाया। उनका अँग्रेज़ी का उच्चारण उत्कृष्ट था

और उनके भाषण अभिव्यक्ति की स्पष्टता के लिहाज़ से सुनने लायक होते थे।

1944 में रामा ने आन्ध्र प्रदेश से अपनी पहली मेडिकल डिग्री हासिल की और 1946 में उसी विश्वविद्यालय से एम.डी. की डिग्री प्राप्त की। फिर वे इंग्लैण्ड में ऑक्सफोर्ड चले गए जहाँ से 1951 में उन्हें डी.फिल. की डिग्री मिली। वहीं से 1967 में उन्होंने डी.एससी. की डिग्री हासिल की। उन्होंने 1947 में न्यूट्रिशन रिसर्च लैबोरेटरी, कुन्नूर (अब राष्ट्रीय पोषण संस्थान, हैदराबाद) से अपना शोधकार्य आरम्भ किया जो अगले छह दशकों तक जारी रहा।

रामा गरीब देशों में बीमारियों के कारणों को समझना और शोध द्वारा उनके उपचार खोजना चाहते थे। शोध के उनके इस मानवीय तरीके में प्रयोगशाला, अस्पताल और समुदाय तीनों का समन्वय था। प्रोटीन-ऊर्जा कुपोषण, आयोडीन के अभाव से होने वाले रोग, कुपोषण जनित रक्तक्षीणता और गर्म देशों में यकृत की बीमारी आदि विभिन्न क्षेत्रों में उन्होंने मौलिक शोधकार्य किया। देश के विकास के लिए प्राथमिक स्वास्थ्य सेवा, संक्रामक रोगों और स्वास्थ्य अनुसन्धान में रामा की गहरी रुचि थी। उनकी व्यक्तिगत निष्ठा और नेतृत्व क्षमता के कारण 1967 के बिहार अकाल और 1971 के बांग्लादेश युद्ध के दौरान हज़ारों-लाखों शरणार्थी कुपोषण के अभिशाप से बच पाए।

घेंघा रोग (गलग्रन्थि की समस्याओं के कारण गला फूलना) के अत्यधिक प्रसार के कारण रामा ने सामुदायिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में एक उत्कृष्ट प्रयोग किया। इसके अन्तर्गत काँगड़ा पहाड़ियों में रहने वाले एक लाख से अधिक लोगों द्वारा आयोडीनयुक्त नमक खाने से इस बीमारी में भारी कमी आई। इस शोधकार्य ने 'राष्ट्रीय आयोडीन अभाव नियंत्रण कार्यक्रम' की नींव रखी जिससे 30 करोड़ से ज़्यादा लोगों का इस रोग से बचाव हुआ।

अन्दर स्वस्थ लाल रक्त होने के कारण सामान्यतः हमारी आँखों की निचली पलक का अन्दरूनी भाग लाल और हमारे नाखून गुलाबी होते हैं।

रक्त में लौहतत्व की कमी से रक्ताल्पता होती है। इससे हमारी आँखों की निचली पलक का अन्दरूनी भाग पीला पड़ जाता है और हमारे नाखून सफेद।

रामालिंगास्वामी ने गर्भवती महिलाओं के आहार में लौहतत्व की कमी को पूरा करने के लिए सफलतापूर्वक लौह-पूरकों के उपयोग की शुरुआत की। इस अकेले कदम से समूचे विश्व की महिलाओं और बच्चों के स्वास्थ्य में उल्लेखनीय सुधार आया।

रामालिंगास्वामी ने एक नई और महत्वपूर्ण खोज की – यकृत की एक बीमारी जो 'इण्डियन चाइल्डहुड सिरौसिस' (Indian Childhood Cirrhosis) के नाम से जानी जाती है।

विटामिन-ए की कमी से रतौन्धी होती है, यह तथ्य तो बहुत पहले से मालूम था। रामालिंगास्वामी पहले व्यक्ति थे जिन्होंने इस विषय पर गम्भीर अध्ययन किया और इसकी पुष्टि की। उन्होंने मादा बन्दरों में विटामिन-ए की कमी से उनके बच्चों के रेटिना की छड़ (rod) और शंकु (cone) कोशिकाओं को हुए नुकसान का अध्ययन किया।

अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान की स्थापना के समय अच्छे शिक्षकों की ज़ोरदार तलाश हुई। तभी रामालिंगास्वामी विकृतिविज्ञान (pathology) विभाग में प्राध्यापक के पद पर नियुक्त हुए। जल्द ही वे विभाग प्रमुख बने और उन्होंने एक उच्च दर्जे

का विकृतिविज्ञान केन्द्र स्थापित किया। उन्होंने अनेक प्रतिभावान छात्रों को प्रेरित किया और इन छात्रों ने उनके नाम और शोहरत को दुनिया के कोने-कोने में पहुँचाया।

अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान में अपने कार्यकाल के दौरान रामालिंगास्वामी ने भारत और पश्चिम के प्रमुख विकृतिविज्ञानियों के बीच संवाद स्थापित करने का महत्वपूर्ण कार्य किया। इस सूची में विश्व के जाने-माने विकृतिविज्ञानी शामिल थे। हार्वर्ड के डॉ. बेंजामिन कैसलमैन और डॉ. वॉल्टर पुश्चर, मोंटीफिओरे अस्पताल के डॉ. हैंस पॉपर, रॉयल फ्री अस्पताल की डॉ. शीला शर्लाक और अन्य दिग्गज डॉक्टरों ने विकृतिविज्ञान के विभिन्न पक्षों पर अग्रगामी व्याख्यान दिए। बाद में रामालिंगास्वामी अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान के निदेशक बने और इस काम को भी उन्होंने बखूबी अंजाम दिया, जिसके लिए उन्हें शिक्षक वर्ग एवं सरकार, दोनों की शाबाशी मिली।

भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसन्धान परिषद को स्थापित करने में रामालिंगास्वामी ने अहम भूमिका निभाई और 1979 में वे इसके महानिदेशक बने। इस संस्था में उन्होंने सात साल काम किया और इस दौरान उन्होंने इसकी गतिविधियों को कई दिशाओं में आगे बढ़ाया। नई संस्थाएँ स्थापित करने के साथ-साथ उन्होंने क्षेत्रीय चिकित्सा अनुसन्धान केन्द्रों की अवधारणा स्थापित की जिससे विशिष्ट एवं दूर-दराज़ के क्षेत्रों की स्थानीय बीमारियों पर शोधकार्य हो सके। उन्होंने भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसन्धान परिषद का पुनर्गठन किया और समकक्ष विद्वानों से हर शोध कार्यक्रम की सख्त समीक्षा करने के आदेश दिए। उनके द्वारा स्थापित तौर-तरीकों से बहुत लाभ हुआ और वे तरीके आज भी उपयोग में लाए जा रहे हैं।

एक अच्छे चिकित्सक की हैसियत से रामालिंगास्वामी ने देश में महामारियों पर शोध की ज़रूरत को महसूस किया। उन्होंने हर रोग को दर्ज और लिपिबद्ध करने पर ज़ोर दिया और भारतीय बीमारियों का पंजीयनालय

(Indian Registry of Diseases) की स्थापना की जिसमें आँकड़ों के विश्लेषण के लिए एक सांख्यिकी विभाग का प्रावधान भी था। इसी की बदौलत बाद में भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसन्धान परिषद में एक स्वतंत्र सांख्यिकी विभाग स्थापित हुआ।

रामालिंगास्वामी ने विश्व की सबसे बड़ी औद्योगिक दुर्घटना – भोपाल गैस काण्ड – की जाँच-पड़ताल की। यूनियन कार्बाइड (अब डाउ केमिकल्स) की उपेक्षा से हज़ारों लोगों की जानें गईं और हज़ारों लोग बीमार हुए।

राष्ट्रीय आपदा और आपातकालीन स्थितियों में अपनी सेवाएँ समर्पित करने को रामालिंगास्वामी सदैव तत्पर रहते थे। भोपाल गैस काण्ड इसकी एक मिसाल है। इस आपदा से निबटने और गैस काण्ड की वैज्ञानिक जानकारी एकत्रित करने के लिए उन्होंने तमाम संस्थागत और मानवीय संसाधन जुटाए। सूरत शहर में हैज़े के दौरान भी उन्होंने सक्रिय सहायता की।

सेवानिवृत्ति के बाद भी अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएँ रामालिंगास्वामी की सेवाओं से लाभान्वित होती रहीं। उन्हें हार्वर्ड विश्वविद्यालय ने प्रारम्भ में फोगर्टी फैलो (Fogarty Fellow) और बाद में विष-विज्ञान के विशिष्ट प्राध्यापक के रूप में आमंत्रित किया। उसके बाद उन्होंने पाँच वर्ष यूनिसेफ (UNICEF) के साथ काम किया। वे राष्ट्रीय स्तर की कई संस्थाओं के साथ लगातार जुड़े रहे जिनमें राजीव गाँधी फाउंडेशन, कैंसर शोध संस्थान, विज्ञान एवं पर्यावरण केन्द्र (सेंटर फॉर साइंस एंड इन्वायरनमेंट) तथा रॅनबॅक्सी फाउंडेशन उल्लेखनीय हैं। अपने जीवन के अन्तिम दिन, 8 मई 2001, तक वे नई दिल्ली स्थित अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान में राष्ट्रीय प्राध्यापक की हैसियत से काम करते रहे।

रामालिंगास्वामी भारतीय चिकित्सा वैज्ञानिकों में सबसे अधिक सम्मानित व्यक्तियों में से थे। उन्हें शान्तिस्वरूप भटनागर और पद्म भूषण पुरस्कारों

से अलंकृत किया गया था। वे रॉयल सोसाइटी के फैलो और भारत की तीनों विज्ञान अकादमियों के सदस्य थे। 1979-80 के दौरान वे भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी के अध्यक्ष थे। वे राष्ट्रीय चिकित्सा विज्ञान अकादमी तथा अमरीकी और रूसी विज्ञान अकादमियों के सदस्य तो थे ही, साथ में वे रॉयल कॉलेज ऑफ फिज़ीशियंस एंड सर्जन्स के भी फैलो थे। स्वीडन के कारोलिंस्का संस्थान ने उन्हें डॉक्टरेट की उपाधि से सुशोभित किया। वे विश्व स्वास्थ्य संगठन की चिकित्सा शोध पर ग्लोबल समिति (Global Advisory Committee on Medical Research) के अध्यक्ष भी थे।

रामालिंगास्वामी ने सुखी पारिवारिक जीवन बिताया। उनकी पत्नी सूर्य प्रभा नई दिल्ली स्थित जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के सामाजिक चिकित्सा शास्त्र और सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र में प्राध्यापक के पद से सेवानिवृत्त हुईं। उनके बेटे वी. जगदीश वर्तमान में अमरीका के मेरीलैंड में एक स्वयंसेवी संस्था एड्स के विरुद्ध दक्षिण एशिया (South Asia Against AIDS) के अध्यक्ष हैं और उनकी बेटी लक्ष्मी न्यू यॉर्क के माउंट सिनाई अस्पताल में काम करती हैं।

जी.एन. रामचन्द्रन

(1922 - 2001)

"अगर आपको लगता है कि आप जानते हैं तो आप सचमुच में नहीं जानते हैं, और अगर आप जानते हैं कि आप किसी चीज़ को नहीं जान सकते, तब आप उसे जानते हैं।"

– जी.एन. रामचन्द्रन

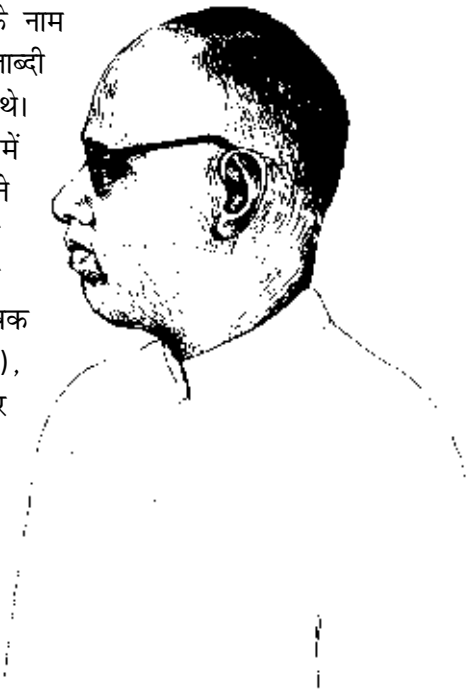

जी.एन. रामचन्द्रन (यहाँ 'जी' उनके पैतृक शहर गोपालसमुद्रम और 'एन' उनके पिता के नाम नारायण अय्यर के प्रथमाक्षर हैं) 20वीं शताब्दी में भारत के सबसे प्रखर वैज्ञानिकों में से थे। उन्होंने अपने शोधकार्य से पूरी दुनिया में भारत का नाम रोशन किया। रामचन्द्रन ने अपना अधिकांश शोधकार्य भारत में ही किया और प्रसिद्ध वैज्ञानिक सी.वी. रामन उनके आदर्श थे। रामचन्द्रन ने आण्विक जैव-भौतिकी (molecular biophysics), विशेषकर प्रोटीन की संरचना को लेकर महत्वपूर्ण शोध किया। रामचन्द्रन ने स्थापित किया कि मज्जा (collagen) की संरचना *तिहरी कुण्डलीदार (triple helical)* होती

है। इस बुनियादी खोज के कारण ही हम अमीनो अम्लों (amino acids) के पेप्टाइड (peptide) नामक यौगिकों को गहराई से समझ सके (कई पेप्टाइड मिलकर प्रोटीन बनाते हैं)।

रामचन्द्रन का जन्म 8 अक्तूबर 1922 को कोचीन के पास दक्षिणी–पश्चिम तट पर स्थित एक छोटे शहर में हुआ। उनके पिता एक स्थानीय महाविद्यालय में गणित के प्राध्यापक थे और उन्होंने राम के मन में बचपन से ही गणित के प्रति प्रेम के बीज बोए। वे अपने महाविद्यालय के पुस्तकालय से गणित की किताबें लाते और रोज़ रामचन्द्रन को प्रमेय हल करने के लिए प्रेरित करते। वे गणित के समीकरण लिखते और राम से उन्हें हल करने को कहते। इसलिए राम बचपन से ही उच्च गणित में पारंगत हो गए थे। आश्चर्य की बात नहीं कि वे हरेक परीक्षा में गणित में 100 प्रतिशत अंक पाते थे। 1942 में रामचन्द्रन ने मद्रास विश्वविद्यालय से बी.एससी. में समूचे विश्वविद्यालय में शीर्ष स्थान प्राप्त किया। सेंट जोसेफ कॉलेज के दो शिक्षकों पी.ई. सुब्रह्मण्यम और कॅथोलिक पादरी फादर राजम ने रामचन्द्रन की रुचि भौतिक विज्ञान में जागृत की।

रामचन्द्रन के पिता चाहते थे कि वे भारतीय प्रशासनिक सेवा में जाएँ, पर रामचन्द्रन की इसमें रुचि नहीं थी। बाद में रेलवे इंजीनियरिंग बोर्ड की परीक्षा के लिए रामचन्द्रन को दिल्ली भेजा गया। रामचन्द्रन ने जानबूझकर इस परीक्षा में गलतियाँ कीं और अनुत्तीर्ण हुए। 1942 में रामचन्द्रन ने बैंगलोर स्थित भारतीय विज्ञान संस्थान के इलेक्ट्रिकल इंजीनियरिंग विभाग में स्नातकोत्तर कार्यक्रम में दाखिला लिया। परन्तु कुछ ही समय बाद सी. वी. रामन उन्हें भौतिक विज्ञान विभाग में ले आए। एक सप्ताह बाद रामन ने रामचन्द्रन को लॉर्ड रैले द्वारा सुझाई एक महत्वपूर्ण समस्या का हल खोजने को कहा। एक ही दिन में रामचन्द्रन ने इस समस्या का गणितीय समीकरण लिखा और उसका हल ढूँढ निकाला। इससे रामन बेहद प्रसन्न हुए। रामन के मार्गदर्शन में रामचन्द्रन ने प्रकाश विज्ञान (optics) और क्ष–किरण स्थल–निरूपण (X-ray topography) के क्षेत्र में स्नातकोत्तर शोधकार्य किया। रामन अपने इस प्रखर छात्र के करिश्मों से फूले नहीं समाए।

1947 में रामचन्द्रन इंग्लैण्ड की कैवेंडिश प्रयोगशाला में शोधकार्य करने गए। इस प्रयोगशाला के प्रमुख लॉरेंस ब्रैग थे। केम्ब्रिज में उन्होंने डब्लू.ए. वूस्टर और एच. लैंग के साथ स्फटिकी (crystallography) पर काम किया। यहाँ उन्होंने क्ष-किरणों के परावर्तन के विकीर्ण को नापकर स्फटिकों के प्रत्यास्थ स्थिरांक (elastic constants) मापने का एक गणितीय सिद्धान्त भी विकसित किया। 1949 में रामचन्द्रन को केम्ब्रिज विश्वविद्यालय ने पीएच.डी. प्रदान की। केम्ब्रिज में ही रामचन्द्रन की भेंट प्रसिद्ध वैज्ञानिक लाइनस पॉलिंग से हुई। वे पेप्टाइड श्रृंखलाओं के प्रतिरूपण अध्ययन पर पॉलिंग के व्याख्यानों से अत्यन्त प्रभावित हुए (देखें बॉक्स)।

लाइनस पॉलिंग
एक जादुई नाम है
रासायनिक बन्ध के सम्बन्ध में
और सभी पदार्थों की
चाहे वे जीवित हों या मृत
प्रकृति और गुण जानने के लिए
और उनका व्यवहार पहचानने के लिए।
उनके महान अल्फा हेलिक्स ने
खोले नए आयाम
सभी जैवबहुलक पदार्थों की
संरचना खोजने के लिए।
यह महान ध्रुव-तारा
विज्ञान के आकाश पर दमकेगा
क्योंकि उसने जीवशास्त्रियों के लिए
खोलीं हैं नई राहें, नए पथ!

1949 में इंग्लैण्ड से लौटने के बाद रामचन्द्रन ने 1952 तक भौतिक विज्ञान का अध्यापन किया। उसी समय मद्रास विश्वविद्यालय के उपकुलपति और दूरदर्शी शिक्षाविद् एल.एल. मुदलियार अपने विश्वविद्यालय में प्रायोगिक भौतिकी विभाग खोलना चाहते थे जिसके लिए उन्होंने सी.वी. रामन को आमंत्रित किया। रामन ने उस पद के लिए रामचन्द्रन की सिफारिश की। परिणामस्वरूप 1952 में मात्र 29 वर्ष की आयु में रामचन्द्रन मद्रास विश्वविद्यालय में प्राध्यापक के पद पर आसीन हुए। मुदलियार की

उदार सहायता से रामचन्द्रन मद्रास विश्वविद्यालय में क्ष-किरण स्फटिकी (X-ray crystallography) की एक विश्वस्तरीय प्रयोगशाला स्थापित करने में सफल हुए।

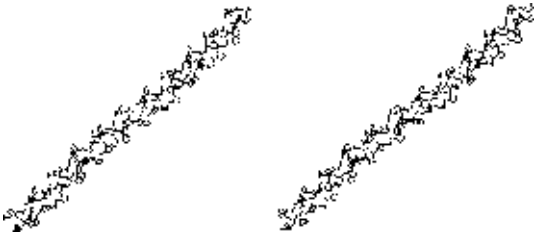

यह मज्जा के मेरुदण्ड की आण्विक संरचना का त्रिविम दृश्य (stereo view) है। यदि देखते हुए आपकी आँखें उसमें से पार जा सकें तो आप वह त्रि-आयामी संरचना देख सकेंगे। आप पॉलीपेप्टाइडों (polypeptides) के तीन तन्तु देख सकते हैं जो कुण्डली बनाते हुए एक-दूसरे में गुँथे हुए हैं।

रामचन्द्रन मज्जा की संरचना खोजने के कार्य में जुट गए। मज्जा बहुतायत में पाया जाने वाला एक प्रोटीन ऊतक होता है। उन्होंने कंगारू की पूँछ की शिरा से मज्जा के नमूने इस्तेमाल किए। इस कार्य में उनके छात्र गोपीनाथ कर्था ने उनकी सहायता की। बहुत श्रम के बाद वे मज्जा के तन्तुओं के क्ष-किरण विवर्तन के प्रतिरूप पाने में सफल हुए। अपने प्रयोग के आधार पर उन्होंने गेंदों और सींकों से मज्जा के प्रतिरूप की संरचना तैयार की। 1954 में उनका यह शोध *नेचर (Nature)* नामक प्रसिद्ध वैज्ञानिक पत्रिका में छपा। बाद में उन्होंने इस प्रतिरूप को संशोधित कर एक नई और मशहूर 'कुण्डलित कुण्डल संरचना' (coiled coil structure) बनाई।

रामचन्द्रन और उनके साथियों ने पॉलीपेप्टाइड शृंखलाओं के विश्लेषण की नींव रखी। उन्होंने एक द्वि-आयामी नक्शे की अवधारणा रखी जो आज जैव-रासायनिक साहित्य में रामचन्द्रन-प्लॉट (Ramachandran plot) के नाम से विख्यात है। इसके द्वारा पॉलीपेप्टाइड की सभी सम्भावित संरचनाओं को समझा जा सकता है। इन खोजों का त्रिविम-रसायन विज्ञान (stereo-chemistry) और संरचनात्मक जीव विज्ञान जैसे विषयों पर गहरा प्रभाव पड़ा।

1970 में मद्रास विश्वविद्यालय से इस्तीफा देने के पश्चात् रामचन्द्रन ने दो

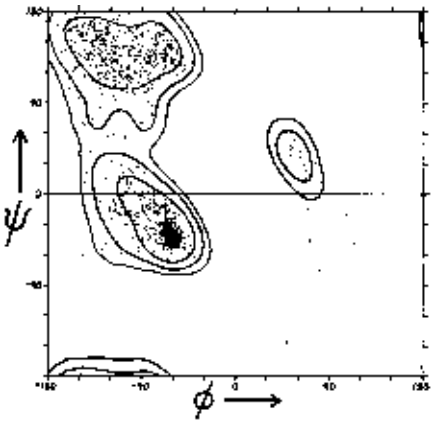

रामचन्द्रन प्लॉट (बाएँ) पेप्टाइड के ऐंठन के कोणों का वितरण दर्शाता है (दाएँ) जो प्रोटीनों की त्रिआयामी संरचना का निर्धारण करता है।

वर्ष शिकागो विश्वविद्यालय के जैव-भौतिकी विभाग में अतिथि प्राध्यापक के रूप में बिताए। दो साल के इस प्रवास में उन्होंने द्वि-आयामी आँकड़ों से त्रि-आयामी चित्र रचने की नई विधि का आविष्कार किया जो बाद में कम्प्यूटर टोमोग्राफी (फाँकचित्र) का आधार बनी। शिकागो से लौटने के बाद रामचन्द्रन ने भारतीय विज्ञान संस्थान में आण्विक जैव-भौतिकी इकाई स्थापित की। 1977 में उन्होंने फोगर्टी स्कॉलर (Fogarty Scholar) की हैसियत से मेरीलैंड (अमरिका) में बेथेस्डा स्थित नेशनल इंस्टिट्यूट फॉर हेल्थ (National Institute for Health) में काम किया। उसी वर्ष उन्हें लन्दन की रॉयल सोसाइटी का फैलो चुना गया। 1978 में वे आण्विक जैव-भौतिकी इकाई से सेवानिवृत्त हुए। उसके बाद भी वे भारतीय विज्ञान संस्थान में 1989 तक गणितीय दर्शन शास्त्र के प्राध्यापक के रूप में काम करते रहे।

1980 के दशक के प्रारम्भ से वे पार्किंसन रोग से पीड़ित रहने लगे। उनकी पत्नी राजम – जिनसे 1945 में उनकी शादी हुई थी – ने बीमारी के दौरान उनकी समुचित सेवा की। 1998 में दिल के दौरे से राजम की आकस्मिक मृत्यु हो गई। यह रामचन्द्रन के लिए एक गहरा सदमा था जिससे वे कभी नहीं उबर सके। 1999 में इंटरनेशनल यूनियन ऑफ क्रिस्टलोग्राफर्स

(International Union of Crystallographers) ने रामचन्द्रन के उत्कृष्ट योगदान के लिए उन्हें पाँचवें इवाल्ड पुरस्कार से सम्मानित किया। 1999 में उन्हें दिल का दौरा पड़ा जिसके बाद से अपनी मृत्यु (7 अप्रैल 2001) तक वे अस्पताल में ही रहे। उनके दो पुत्र हैं – रमेश नारायण जो हार्वर्ड विश्वविद्यालय में खगोलशास्त्र के प्राध्यापक हैं और हरि जो प्लाज़्मा अनुसन्धान संस्थान, गाँधीनगर में कार्यरत हैं। उनकी बेटी विजया टेक्सास विश्वविद्यालय में कम्प्यूटर साइंस की प्राध्यापक हैं।

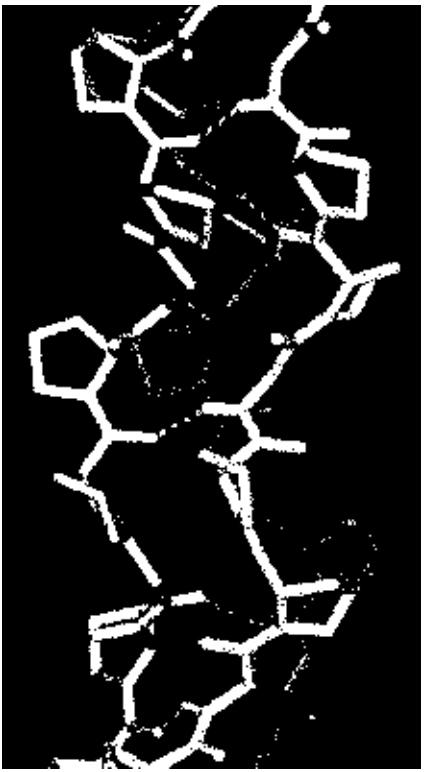

रामचन्द्रन तमाम कुशलताओं और प्रतिभाओं से सम्पन्न थे। भारतीय और पश्चिमी शास्त्रीय संगीत के साथ-साथ भारतीय तथा पाश्चात्य दर्शन में भी उनकी गहरी रुचि थी। अपने सम्पूर्ण वयस्क जीवन में वे गम्भीर मानसिक बीमारियों से ग्रस्त रहे। परन्तु उससे उनकी वैज्ञानिक सृजनात्मकता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। रामचन्द्रन असली मायनों में नोबल पुरस्कार पाने के योग्य वैज्ञानिक थे किन्तु हैरानी की बात है कि भारत सरकार ने उन्हें कोई सम्मान प्रदान नहीं किया। क्योंकि मज्जा चमड़े का एक अभिन्न अंग है, इसलिए चेन्नई स्थित केन्द्रीय चमड़ा अनुसन्धान संस्थान ने अपने बड़े सभागृह का नाम ट्रिपल-हैलिक्स (Triple Helix) रखा, जो रामचन्द्रन द्वारा खोजी गई मज्जा-संरचना का नाम है। यह खोज उन्होंने 1954 में की थी।

हरीश चन्द्र

(1923 - 1983)

हरीश चन्द्र अपनी पीढ़ी के एक विशिष्ठ गणितज्ञ थे। उन्होंने गणित की एक शाखा 'रिप्रेज़ेंटेशन थ्योरी' (representation theory) प्रतिरूपणात्मक सिद्धान्त) पर शोध किया और उसे हाशिए से उठाकर एक अत्यन्त महत्वपूर्ण शाखा में बदल दिया। इसके बाद यह शाखा सम-सामयिक गणित में केन्द्रीय महत्व की शाखा बन गई।

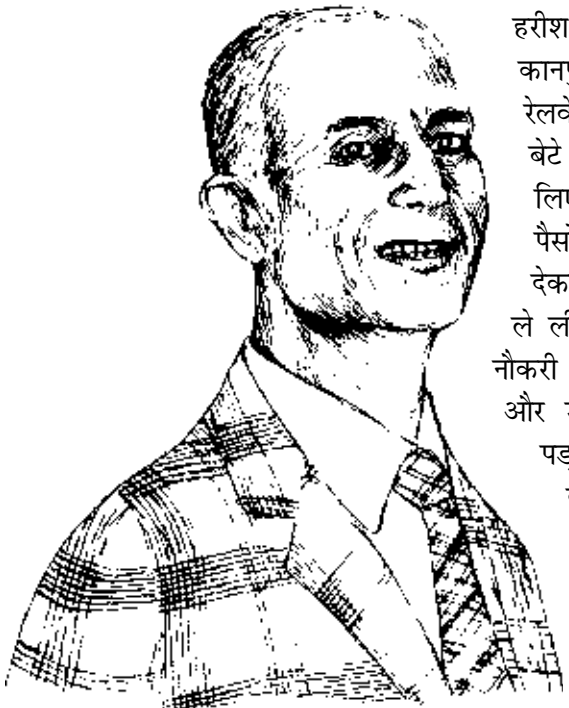

हरीश का जन्म 11 अक्तूबर 1923 को कानपुर में हुआ। उनके दादाजी अजमेर में रेलवे के एक वरिष्ठ क्लर्क थे। वे अपने बेटे चन्द्रकिशोर को अच्छी शिक्षा देने के लिए कटिबद्ध थे। बेटे की शिक्षा के लिए पैसों की खातिर उन्होंने नौकरी से इस्तीफा देकर अपनी पेंशन आदि की रकम इकट्ठा ले ली। उसके बाद उन्होंने दुबारा रेलवे में नौकरी की। इससे उनकी वरिष्ठता जाती रही और उन्हें निचले स्तर पर नौकरी करनी पड़ी। हरीश के पिता चन्द्रकिशोर का दाखिला देश के सर्वश्रेष्ठ महाविद्यालय, थॉमसन इंजीनियरिंग कॉलेज, रुड़की

में हुआ। वह भारत का पहला इंजीनियरिंग कॉलेज था जो लोक निर्माण विभाग के लिए सिविल इंजीनियर तैयार करने के लिए शुरू किया गया था। धीरे-धीरे चन्द्रकिशोर बहुत ऊँचे ओहदे पर पहुँचे और अन्त में उत्तर प्रदेश के सिंचाई विभाग के कार्यकारी-इंजीनियर के पद से रिटायर हुए। हरीश अक्सर अपने पिता के साथ दूर-दराज़ बनी नहरों को देखने जाया करते थे।

हरीश की माँ सत्यगति सेठ एक ज़मींदार परिवार की थीं। उनके परिवार ने कभी 1857 के केन्द्रिय व्यक्तित्व – झाँसी की रानी – को अपने घर में पनाह दी थी। कृतज्ञता के रूप में झाँसी की रानी ने उन्हें अपनी तलवार भेंट की थी। इस भेंट को उनके परिवार ने पैतृक सम्पत्ति के रूप में बहुत आदर-सम्मान के साथ सँजोकर रखा। हरीश ने अपने बचपन का ज़्यादातर समय अपने नाना के घर पर ही बिताया। वे पढ़ाई में कुशाग्र थे परन्तु अक्सर बीमार रहते थे। वे कमज़ोर थे इसलिए उनकी कक्षा के लड़के हमेशा उनका मज़ाक उड़ाते थे। नाना के घर में हरीश की रुचि शास्त्रीय संगीत में जगी, जो जीवन भर बनी रही। हरीश के बड़े भाई सतीश ने आई.सी. एस. में नौकरी की और वे स्वतंत्र भारत में उच्च स्तर के नौकरशाह बने।

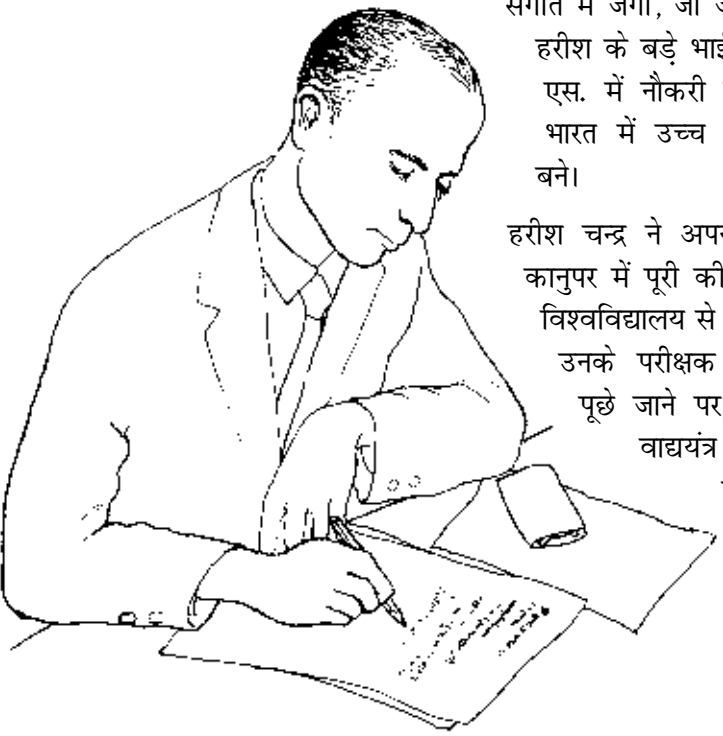

हरीश चन्द्र ने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा कानुपर में पूरी की। उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एम.एससी. की जहाँ उनके परीक्षक सी.वी. रामन थे। पूछे जाने पर चन्द्र ने तुरन्त ही वाद्ययंत्र मृदंग के कम्पन के सिद्धान्त की समस्या हल की जिससे रामन अत्यन्त प्रभावित हुए और

उन्होंने चन्द्र को 100 प्रतिशत अंक दिए। इलाहाबाद विश्वविद्यालय में के.एस. कृष्णन ने चन्द्र को हर तरह से प्रोत्साहित किया और उनके नाम की सिफारिश की। इससे चन्द्र भारतीय विज्ञान संस्थान, बैंगलोर में होमी भाभा के मार्गदर्शन में काम करने गए। उस समय वहाँ सी.वी. रामन की शोहरत बुलन्दी पर थी, इसलिए आश्चर्य नहीं कि चन्द्र ने गणित की बजाय भौतिक विज्ञान ही पढ़ना उचित समझा। इलाहाबाद विश्वविद्यालय में चन्द्र को श्रीमती एच. काले फ्रांसीसी भाषा सिखाती थीं। इसके बाद वे भारतीय विज्ञान संस्थान की लाइब्रेरियन बन गई थीं। इसलिए चन्द्र बैंगलोर में उन्हीं के साथ रहे। बाद में चन्द्र की शादी श्रीमती काले की बेटी ललिता के साथ हुई।

होमी भाभा ने चन्द्र की प्रतिभा पहचानी और उन्हें इंग्लैण्ड में प्रोफेसर डिराक के साथ काम करने के लिए भेजा। 1945 में केम्ब्रिज विश्वविद्यालय में डिराक के छात्र के रूप में काम करते हुए चन्द्र ने अपनी सच्ची रुचि पहचानी और वे भौतिक विज्ञान छोड़कर गणित में शोधकार्य करने लगे। केम्ब्रिज में पढ़ाई के दौरान उन्होंने वॉल्फगैंग पाओली के व्याख्यान सुने और एक व्याख्यान के दौरान पाओली की एक गलती बताई। इसके बाद पाओली और चन्द्र की जीवन भर के लिए मित्रता हो गई। 1947 में चन्द्र को पीएच.डी. मिली। उनके शोध का विषय था "इनफाइनाइट इर्रिड्यूसेबल रिप्रेज़ेंटेशंस ऑफ द लॉरेंट्स ग्रुप" (लॉरेंट्स ग्रुप के अपरिमित अखण्डनीय प्रतिरूपण)। उसी साल चन्द्र अमरीका चले गए। इंस्टिट्यूट ऑफ एडवांस्ड स्टडीज़, प्रिंसटन में आते ही चन्द्र अत्यन्त तेज़ गति से काम में जुट गए। उन्होंने काम के वे मानक स्थापित किए जिनकी लोग वाहवाही तो कर सकते थे परन्तु उन पर अमल करना मुश्किल था। जब डिराक प्रिंसटन आए तो चन्द्र ने उनके सहायक के रूप में काम किया।

चन्द्र दो गणितज्ञों से बहुत प्रभावित थे – हरमन वेअल और क्लॉड शेवेली। उन्होंने 1950 से 1963 तक 13 वर्ष कोलंबिया विश्वविद्यालय में गणित में शोधकार्य किया, जिसमें उन्होंने 'इंडक्टिव लॉजिक' (आगमिक तर्क) का उपयोग किया। चन्द्र ने प्रसिद्ध गणितज्ञ अरमांड बोरेल के साथ मिलकर संख्यात्मक समूहों (arithmetic groups) का सिद्धान्त प्रतिपादित किया।

1968 से 1983 तक मृत्युपर्यन्त, वे इंस्टिट्यूट ऑफ एडवांस्ड स्टडीज़, प्रिंसटन के गणित विभाग में आई.बी.एम. वॉन नौयमैन प्रोफेसर रहे।

चन्द्र ज़रा भी कागज़ को बेकार नहीं जाने देते थे और अपनी पाण्डुलिपियों के पिछले पन्नों पर अपना कच्चा काम करते थे। उनके व्याख्यानों की, जिन्हें वे पाठ्यक्रम के रूप में पढ़ाते थे, ज़बरदस्त माँग रहती थी। उनके व्याख्यानों से एक गणितज्ञ की सोच और संघर्षों की अनुभूति मिलती थी। चन्द्र खुद को गणित में एक बाहरी व्यक्ति मानते थे, शायद इसलिए क्योंकि उन्होंने इस विषय को काफी बाद में चुना था। वे दो अन्य बाहरी व्यक्तियों के बड़े प्रशंसक थे – ये थे महान चित्रकार विनसेंट वान-गॉग और सेज़ान। शायद इन दोनों चित्रकारों में वे अपनी छवि देखते थे। चन्द्र अपनी युवावस्था में स्वयं एक उत्साही व प्रतिभाशाली चित्रकार थे।

भारत और इंग्लैण्ड में अपने अन्तिम वर्षों में हरीश चन्द्र 'रिलेटिविस्टिक फील्ड थ्योरी' (आपेक्षिकीय फील्ड सिद्धान्त) में व्यस्त रहे। तब से उनके कार्य का उल्लेख कई शोध पत्रिकाओं ने किया। एक गणितज्ञ के रूप में हरीश चन्द्र ने ऊँची बुलन्दियों को छुआ। उनके सिद्धान्त आज भी उस 'गौथिक चर्च' के समान अटल हैं जिसकी नींव भारी-भरकम भले ही हो, परन्तु उसका ऊपरी भाग हल्का और आसमान को छूता है। चन्द्र के लिए गणित का विषय भगवान और इन्सानों के बीच मध्यस्थता का एक माध्यम था। उसमें उनकी भूमिका लोगों को भगवान के करीब लाना नहीं थी बल्कि भगवान को इन्सानों के पास लाने की थी।

हरीश चन्द्र 1957-58 में गुगेनहीम फैलो और 1961-63 के बीच स्लोन फैलो रहे। 1973 में उन्हें रॉयल सोसाइटी की फैलोशिप से सम्मानित किया गया। 1975 में उन्हें भारतीय विज्ञान अकादमी और राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी की फैलोशिप प्रदान की गई। 1981 में उन्हें अमरीका की नेशनल एकॅडमी ऑफ साइंस (National

Academy of Science) की सदस्यता प्रदान की गई। वे मुम्बई स्थित टाटा मूलभूत अनुसन्धान संस्थान के मानद फैलो भी थे। 1973 में उन्हें दिल्ली विश्वविद्यालय और 1981 में येल विश्वविद्यालय ने डॉक्टरेट की मानद उपाधियों से सम्मानित किया। 1954 में उन्हें अमरीकन मॅथमॅटिकल सोसाइटी (American Mathematical Society) का 'कोल पुरस्कार' और 1974 में भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी का श्रीनिवास रामानुजन पदक प्राप्त हुआ। भारत सरकार ने उनके सम्मान में इलाहाबाद में गणित और भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में बुनियादी शोध करने वाली संस्था का नाम हरीश चन्द्र शोध संस्थान (Harish-Chandra Research Institute) रखा।

1983 में दिल का दौरा पड़ने से हरीश चन्द्र का देहान्त हुआ। उस समय प्रिंसटन में गणितज्ञ अरमांड बोरेल की 60वीं वर्षगाँठ के उपलक्ष्य में एक समारोह चल रहा था। अगले साल इसी प्रकार का समारोह हरीश चन्द्र के सम्मान में आयोजित होना था। हरीश चन्द्र अपने पीछे पत्नी ललिता और दो बेटियाँ, प्रेमला और देविका, छोड़ गए।

ए.एस. पेंटल

(1925 - 2004)

औतार सिंह पेंटल शायद भारत के सबसे प्रसिद्ध शरीर-क्रिया वैज्ञानिक (physiologist) थे। एक असाधारण शोधकर्ता होने के साथ-साथ वे सजीव एवं अपने विचारों के प्रति दृढ़प्रतिज्ञ व्यक्ति थे।

पेंटल का जन्म 1925 में मोगौक, म्यांमार (तत्कालीन बर्मा) में हुआ था, जहाँ उनके पिता ब्रिटिश मेडिकल सर्विस में कार्यरत थे। उन्होंने 14 साल की आयु में लाहौर से 10वीं की परीक्षा उत्तीर्ण की और उसके बाद फोरमैन क्रिश्चियन कॉलेज से इंटर पास किया। उसके पश्चात् वे अपने माता-पिता के पास आ गए जो तब तक लखनऊ में बस गए थे। 1943 में बर्मा सरकार की वित्तीय सहायता से उन्होंने किंग जॉर्ज मेडिकल कॉलेज, लखनऊ में दाखिला लिया।

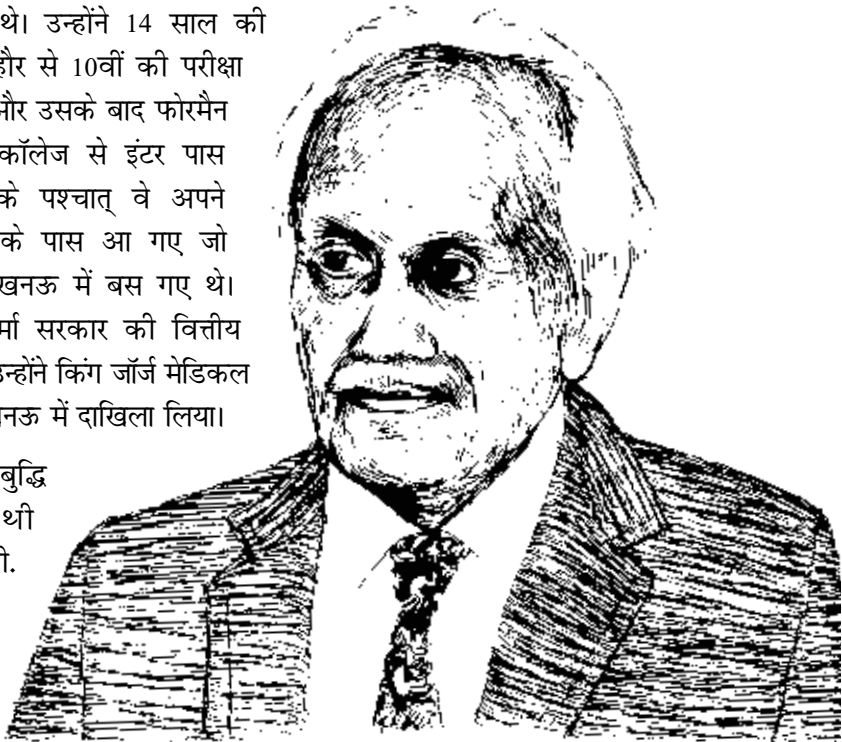

पेंटल की बुद्धि विलक्षण थी और एम.बी.

बी.एस. के दौरान उन्होंने कई पुरस्कार जीते, जिनमें सर्वश्रेष्ठ छात्र को मिलने वाला हैविट स्वर्ण पदक शामिल था। उन दिनों हरेक डॉक्टर मरीज़ों का इलाज करके सुपर-स्पेशलिस्ट बनना चाहता था। परन्तु पेंटल ने इस राह को त्यागकर शरीर-क्रिया विज्ञान में शोध करने की ठानी। एम.डी. में उनके शोध का विषय था – सामान्य व्यक्तियों एवं मनोरोगियों की त्वचा में विद्युत प्रतिरोध (Electrical Resistance of the Skin in Normal Beings and Psychotics)। इस शोधकार्य के लिए उन्होंने खुद अपने हाथों से सारे वैज्ञानिक उपकरण बनाए। किन्तु शोध के लिए 400 मनोरोगियों का मिलना बहुत कठिन काम था।

पेंटल ने मानवीय विद्युतीय संवेदना मापने की पेंटल इंडेक्स (Paintal Index) नामक एक नई संकेतसूची बनाई। प्रारम्भिक दौर में शोधकर्ताओं ने इसका खूब उपयोग किया। पेंटल अपनी मातृसंस्था किंग जॉर्ज मेडिकल कॉलेज में ही रहे और बाद में वहीं पर शरीर-क्रिया विज्ञान के व्याख्याता बन गए।

फिर उन्हें एडिनबरा मेडिकल स्कूल में पीएच.डी. करने के लिए रॉकफेलर छात्रवृत्ति मिली। यहाँ उन्होंने 'जे-संग्राहकों' (J-receptors) को खोजा। उस समय किसी तंत्रिका के एक रेशे को उसकी सक्रियता खत्म किए बिना विच्छेदित करना बहुत मुश्किल काम था। उन्होंने एक नया तरीका खोजा जिसमें उन्होंने पूरी तंत्रिका को तरल पैराफिन में डुबोया और फिर बिना उसकी सक्रियता खत्म किए, एक-एक रेशे को अलग किया। उनके इस अनुसन्धान से इस क्षेत्र में शोधकार्य को बहुत बल मिला।

1953 में पेंटल भारत लौटे और उन्होंने कानपुर की सुरक्षा प्रयोगशाला में कार्य शुरू किया। वहाँ पाँच वर्ष काम करने के बाद उन्होंने शरीर-क्रिया विज्ञान के शोधकर्ता के रूप में दिल्ली स्थित अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान, में काम शुरू किया। छह वर्ष बाद वे वल्लभ भाई पटेल चेस्ट हॉस्पिटल के निदेशक बने और इस पद पर वे 1990 तक आसीन रहे। बाद में भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसन्धान परिषद के महानिदेशक के पद पर रहते हुए भी उन्होंने पटेल अस्पताल स्थित अपनी दो कमरे की प्रयोगशाला में शोधकार्य जारी रखा।

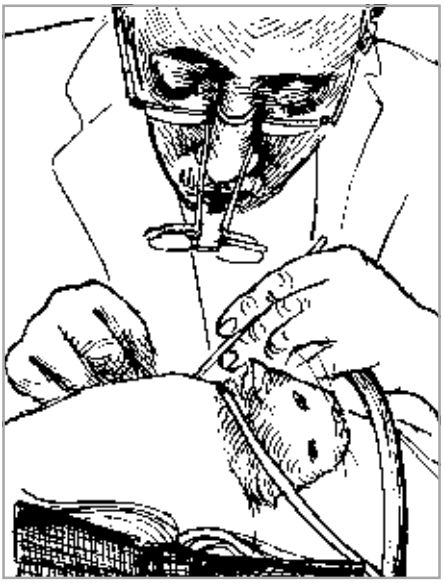

पेंटल को जे-संग्राहकों की खोज के लिए जाना जाता है। यह शब्द उन्होंने ही गढ़ा और इस पर उन्होंने गम्भीर शोध कार्य भी किया। हमारे हृदय और गुर्दों में तन्तुओं का एक विशाल जाल होता है। ये तन्तु स्थानीय परिवेश में रासायनिक अथवा यांत्रिक बदलाव होने पर तुरन्त संकेत भेजते हैं। पेंटल ने दिखाया कि जे-संग्राहक ही प्रतिवर्त क्रियाओं (reflex action) के लिए ज़िम्मेदार होते हैं, जो माँसपेशियों के व्यायाम के दौरान उसकी सीमा निर्धारित करने के लिए प्रतिपुष्टि तंत्र के रूप में कार्य करते हैं। व्यायाम के दौरान विषाक्तता से माँसपेशियों की सुरक्षा के लिए नकारात्मक नियंत्रण आवश्यक होता है। जे-संग्राहकों की खोज की दुनियाभर में खूब वाहवाही हुई।

पेंटल अपने शोध के क्षेत्र में दुनिया के अग्रणी लोगों में गिने जाते थे। सुप्रसिद्ध हृदय-वाहिका शरीर विज्ञानी प्रोफेसर सी. हैमंस ने पेंटल के काम की दाद देते हुए तन्तु क्रिया सामर्थ्य (fibre action potential) पर शोध के दो स्पष्ट काल सुझाए – पेंटल-पूर्व और पेंटल-उत्तर।

पेंटल ने जे-संग्राहकों के भिन्न पक्षों पर शोध जारी रखा जिसमें ऊँचे पहाड़ों पर शरीर-क्रिया विज्ञान एवं बहुत श्रम के बाद साँस फूलने जैसी चीज़ें शामिल थीं। इस शोध ने इस बात पर प्रकाश डाला कि ऊँचे इलाकों में कार्यरत भारतीय फौजी वहाँ की परिस्थितियों से कैसे अभ्यस्त होते हैं।

ऊँचे प्रशासकीय पदों की चमक-दमक के प्रति पेंटल कभी भी आकर्षित नहीं हुए। वे अपनी छोटी प्रयोगशाला में खुश थे जहाँ वे गहराई से अपनी खोजबीन जारी रख सकते थे। पेंटल विज्ञान के महज़ एक अच्छे शोधकर्ता

ही नहीं थे। विज्ञान के नैतिक मूल्यों में उनकी गहरी रुचि थी जिसके लिए उन्होंने सोसाइटी फॉर साइंटिफिक वैल्यूज़ (Society for Scientific Values) नाम की संस्था स्थापित की थी। बहुत से वरिष्ठ और युवा वैज्ञानिक इस संस्था के प्रति आकर्षित हुए। यह समूह अपना समय और पैसा खर्च करके वैज्ञानिक धोखाधड़ी के मामलों की जाँच-पड़ताल कर सच्चाई तक पहुँचने का भरसक प्रयास करता था। आज बहुत से लोग और जानी-मानी संस्थाएँ इस समूह की सहायता लेते हैं। पेंटल के ऊँचे नैतिक मापदण्ड अक्सर उनके सहकर्मियों को अखरते थे। वे किसी होटल में आयोजित बैठक या समारोह में कभी भाग नहीं लेते थे। उनका मानना था कि शैक्षिक या वैज्ञानिक बैठकें विश्वविद्यालय के प्रांगण में ही आयोजित होनी चाहिए और पाँच-सितारा होटलों में होने वाले ऐसे आयोजनों से उन्हें दुख होता था। वे कभी किसी कलंकित संस्था में पैर भी नहीं रखते थे – चाहे वह संस्था उन्हें सम्मानित ही क्यों न कर रही हो! उनके इन ऊँचे नैतिक गुणों के कारण बहुत से लोग उन्हें सनकी करार देकर उनसे नाराज़ रहते थे।

पेंटल के छात्र उन्हें प्रयोगशाला में अक्सर किसी उपकरण की मरम्मत करने में तल्लीन पाते। भारतीय वैज्ञानिक बिरले ही ऐसा करते हुए दिखते थे! निष्ठा के उन उच्च मानकों का अनुकरण करना मुश्किल था। वे गहराई से महसूस करते थे कि लोग नकल करना छोड़ कुछ मौलिक शोध करें जिससे ज्ञान का मौजूदा भण्डार बढ़े। पेंटल का मानना था, "दूसरों के श्रम और ज्ञान पर निर्भर रहकर अनुसन्धान करना चोरी करने के समान है।"

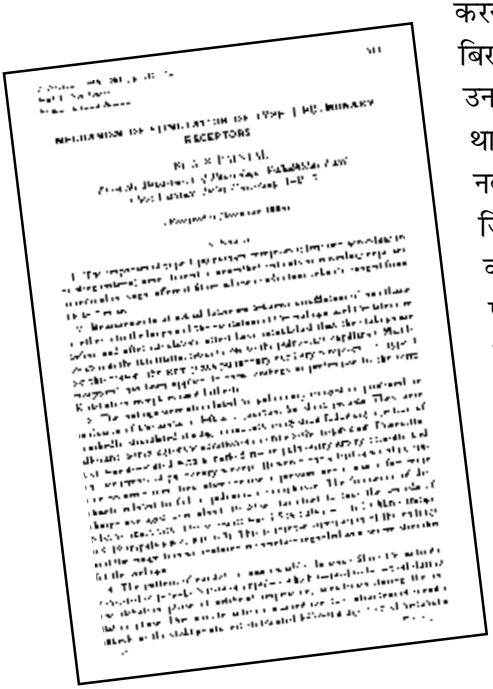
RECEPTORS

शरीर-क्रिया विज्ञान पर शोध के अलावा पेंटल का एकमात्र अन्य शौक था यमुना नदी में नाव चलाना। पर यह वे सालों पहले करते थे, क्योंकि बाद में यमुना नदी न रहकर एक नाला बन गई।

उनका व्याख्यान देने का तरीका भी बहुत रोचक था। उबाऊ भाषण की बजाय वे किस्से-कहानियाँ और अपने अनुभव सुनाते और वैज्ञानिक चर्चाएँ करते। इससे रट्टू तोता छात्र नाराज़ होते क्योंकि उन्हें तो रटने के लिए केवल नोट्स चाहिए होते थे! परन्तु जो छात्र ज्ञान के पिपासु थे, उन्हें पेंटल के प्रेरक व्याख्यानों में अपार आनन्द आता था। पेंटल 'सही' और 'गलत' के अपने मूल्यों पर अटल रहते और व्यावहारिक कारणों से या सामाजिक मंज़ूरी के लिए उन्हें बदलने की ज़रूरत नहीं समझते थे।

अपने 50 सालों के लम्बे शोधकाल में पेंटल ने 400 से अधिक शोधपत्र लिखे। उनके अनुसन्धान का जैव-चिकित्सा विज्ञान पर काफी प्रभाव पड़ा और शरीर-क्रिया विज्ञान के क्षेत्र में तो उनका योगदान अद्वितीय है। अनेक शोधकर्ताओं द्वारा उनके शोधपत्रों का व्यापक रूप से उल्लेख किया जाता है। 2004 तक उनके शोधपत्रों का 3,672 बार उल्लेख हुआ जो किसी भी शोधकर्ता के लिए बहुत बड़ी उपलब्धि है। हालाँकि पेंटल का मानना था कि किसी भी वैज्ञानिक का मूल्यांकन मात्र उसके शोधपत्रों अथवा पुस्तकों के आधार पर नहीं होना चाहिए। उनके अनुसार, "इस प्रकार के मूल्यांकन से कुष्ठ-रोग जैसे अत्यावश्यक क्षेत्रों में शोधकार्य पिछड़ता है (पश्चिमी

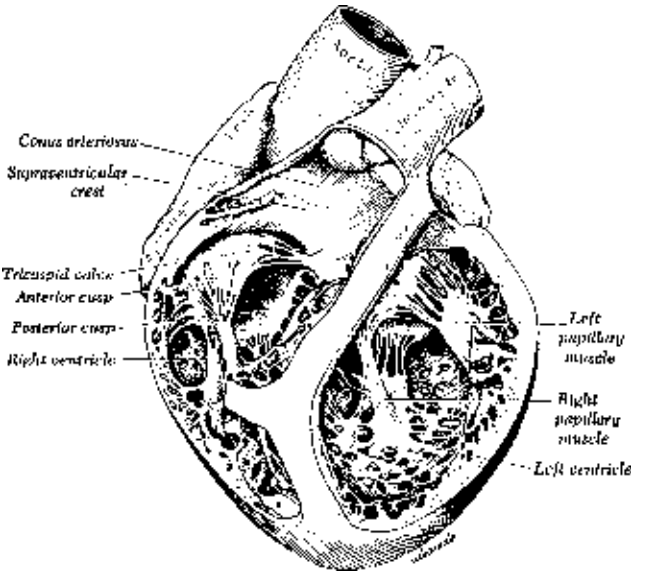

देशों को इसकी ज़रूरत नहीं है)। इसलिए, वैज्ञानिकों के मूल्यांकन का आधार उनके शोध की सामाजिक उपयोगिता और उनमें निहित सामाजिक मूल्य ही हो सकते हैं।"

जिस युग में पूरी दुनिया में वैज्ञानिक ऐसे-ऐसे क्षेत्रों में घुस रहे थे जिनमें ज़्यादा पैसा उपलब्ध था और जो ज़्यादा प्रसिद्धि दिला सकते थे तब भी पेंटल अपनी पसन्द के क्षेत्र शरीर-क्रिया विज्ञान में शोध करते रहे जिसकी ओर अधिक लोग आकर्षित नहीं होते थे।

उन्हें अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किया गया। 1981 में उन्हें रॉयल सोसाइटी, लन्दन और 1996 में रॉयल सोसाइटी, एडिनबर्ग की फैलोशिप मिली। वे भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी और भारतीय विज्ञान कांग्रेस के अध्यक्ष रहे। वे थर्ड वर्ल्ड एकॅडमी (Third World Academy) के संस्थापकों में से एक थे। इस संस्था का काम उनके दिल के बहुत करीब था। 1986 में भारत सरकार ने पेंटल को पद्म विभूषण से अलंकृत किया। उनकी पत्नी आनन्द ने जीवन भर अपने पति के शोध में हाथ बँटाया। औतार सिंह पेंटल का व्यक्तित्व बहुत सरल था। वे दूसरों की गलतियों को नज़रन्दाज़ करते और अपनी महानता का कभी अभिमान नहीं करते थे। इस महान चिकित्सा शोधकर्ता का देहान्त 21 दिसम्बर 2004 में दिल्ली में हुआ।

ए.पी. मित्रा

(1927 - 2007)

प्रोफेसर अशेष प्रसाद मित्रा ने आयनमण्डल (ionosphere) और मौसम-परिवर्तन (climate change) के क्षेत्र में अद्वितीय कार्य किया। उन्होंने अपने गुरु प्रोफेसर शिशिर कुमार मित्रा के शोधकार्य को दक्षता से आगे बढ़ाया।

ए.पी. मित्रा का जन्म 21 जनवरी 1927 में कोलकाता में हुआ। इसी शहर में उनकी प्रारम्भिक शिक्षा हुई। उनके पिता एक विद्यालय में शिक्षक थे जिनसे उन्होंने शिक्षा और अनुशासन के उच्च मूल्य ग्रहण किए। बचपन के इन मूल्यों का मित्रा ने पोषण किया और उन्हें आजीवन अपनाया। पढ़ाई में तेज़ होने के कारण वे अपनी कक्षा में हमेशा प्रथम आते। कोलकाता विश्वविद्यालय से एम.एससी. की पढ़ाई समाप्त करने के बाद उन्होंने प्रोफेसर एस.के. मित्रा की प्रयोगशाला में काम प्रारम्भ किया। प्रोफेसर मित्रा ने आयनमण्डल के क्षेत्र में अग्रणी शोध कार्य किया था। इस एक निर्णय ने उन्हें विज्ञान के क्षेत्र में आगे बढ़ाया और उसमें गौरवशाली स्थान दिलाया।

1954 में कोलकाता विश्वविद्यालय से डी.फिल. समाप्त करने के बाद मित्रा ने दिल्ली स्थित राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला (National Physical Laboratory) में काम करना शुरू किया। वहाँ उन्होंने रेडियो-विज्ञान का एक नया विभाग शुरू किया और उसके साथ अन्त तक बहुत गहराई से जुड़े रहे। रेडियो विज्ञान का विकास बहुत हद तक आयनमण्डल के अध्ययन से जुड़ा था। आयनमण्डल पृथ्वी के ऊपरी वातावरण का वह क्षेत्र है जो रेडियो-तरंगों को परावर्तित कर वापस भेजता है। इसी वजह से पृथ्वी की गोल सतह पर रेडियो संचार सम्भव हो पाता है। रॉकेटों के आगमन से पहले वातावरण के इस दूरस्थ क्षेत्र तक पहुँच पाना बहुत मुश्किल काम था। आयनमण्डल के बारे में हम जो कुछ थोड़ा-बहुत जानते थे वह वर्णक्रम विज्ञान (spectroscopy) या पृथ्वी पर लगे वैज्ञानिक उपकरणों द्वारा ही सम्भव हो पाता था। भारत में आयनमण्डल पर शोधकार्य की नींव प्रोफेसर एस.के. मित्रा ने रखी थी। लम्बे समय तक उनसे जुड़े रहे उनके उत्तराधिकारी ए.पी. मित्रा ने इस कार्य को आगे बढ़ाया।

आयनमण्डल पर शोधकार्य हमेशा किसी काल विशेष में उपलब्ध तकनीक पर निर्भर रहा है। पिछली सदी के साठ के दशक में इस ऊपरी वातावरण की जाँच-परख रॉकेटों के साथ भेजे उपकरणों के ज़रिए की गई। सत्तर के दशक में 'सैटेलाइट इंस्ट्रक्शनल टेलिविज़न एक्सपेरिमेन्ट' कार्यक्रम के अन्तर्गत रेडियो-संकेतों द्वारा इस क्षेत्र का अध्ययन किया गया। अस्सी के दशक में हीलियम के गुब्बारों और रॉकेटों के ज़रिए इस दूर-दराज़ क्षेत्र के बारे में तमाम जानकारी एकत्रित की गई। नब्बे के दशक में उपग्रहों और राडार के ज़रिए पृथ्वी की सतह से 1,000 किलोमीटर ऊपर तक के क्षेत्र का अध्ययन हुआ। इसमें उस क्षेत्र के भौतिक गुणधर्मों, जैसे घनत्व और तापमान के साथ-साथ अन्य बहुत से मापदण्डों का अध्ययन हुआ। मित्रा ने इन सब अध्ययनों का समन्वय किया और निगरानी की।

अन्तर्राष्ट्रीय भू-भौतिक वर्ष 1957-58 और अन्तर्राष्ट्रीय सूर्य वर्ष 1964-65 के दौरान मित्रा ही भारतीय दल की प्रमुख चालक शक्ति थे।

1970 के दशक में मित्रा ने परिवर्ती मण्डल (troposphere) क्षेत्र में रेडियो-शोधकार्य का प्रारम्भ किया। इससे भारत की रेडियो संचार क्षमता

को बहुत लाभ पहुँचा। उन्होंने भारत समेत मध्य और दक्षिण-पूर्व एशिया में सम्भावित भूकम्पों की पूर्व-चेतावनी देने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय रेडियो व भू-भौतिक चेतावनी केन्द्र (International Radio and Geophysical Warning Centre) की स्थापना की। उन्होंने इसी तरह रेडियो तरंगों द्धारा आग की लपटें पहचानने का तंत्र भी स्थापित किया।

मित्रा एक बढ़िया वैज्ञानिक होने के साथ-साथ एक कुशल प्रशासक भी थे, और अपने स्वभाव की दृढ़ता के लिए जाने जाते थे। इन गुणों के कारण 1982-86 के दौरान राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला के निदेशक और 1986-91 के दौरान वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसन्धान परिषद के महानिदेशक के पद पर उन्होंने प्रभावी तरीके से कार्य किया। वे 'मॉनसून एशिया एकीकृत क्षेत्रीय अध्ययन' कार्यक्रम (Monsoon Asia Integrated Regional Study programme) में भारत के प्रमुख संचालक थे।

1990 के दशक में मनुष्य की गतिविधियों द्वारा दुनिया के पर्यावरण में आए बदलाव और उसके परिणामों के अध्ययन पर मित्रा का प्रमुख बल रहा। ओज़ोन परत, वातावरणीय रसायन विज्ञान और भारत में ग्रीनहाउस गैसों को मापने के उनके अद्वितीय शोधकार्य का अन्तर्राष्ट्रीय असर हुआ। 1990 के आरम्भ में अमरीका की पर्यावरण संरक्षण एजेंसी ने आरोप लगाया कि भारत में धान के खेतों से प्रति वर्ष 38.4 मिलियन टन मीथेन गैस उत्सर्जित होती है जो पृथ्वी के तापमान के बढ़ने का एक प्रमुख कारण है। मित्रा ने इसे सफेद झूठ बताया और अपने ठोस वैज्ञानिक अध्ययन से सिद्ध किया कि भारतीय धान के खेतों से केवल चार मिलियन टन मीथेन ही निकलती है। और सच्चाई यह है कि भारत की तुलना में पश्चिम के देश प्रति व्यक्ति नौ गुना ज़्यादा ग्रीनहाउस गैसें पैदा करते हैं। उन्होंने कोयला जलने से तथा दुकानों व घरों में लगे डीज़ल जेनरेटरों और कृषि उत्पादन में लगे डीज़ल इंजनों द्वारा पैदा प्रदूषण के प्रति आगाह किया।

वे पर्यावरण से जुड़े विज्ञान की राजनीति को उत्कृष्ट स्वदेशी वैज्ञानिक शोध से चुनौती देना चाहते थे। उन्हें लगता था कि विदेशी धन प्रदाता संस्थाएँ

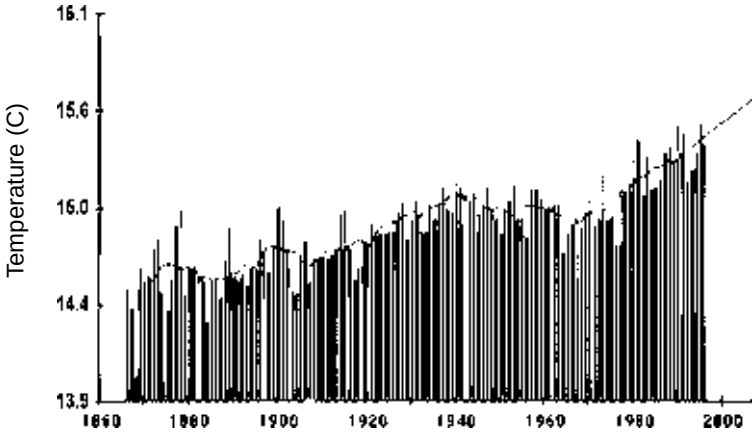

वार्षिक वैश्विक तापमान के इस ग्राफ में वैश्विक तापमान वृद्धि दिखाई गई है।

अपने संकीर्ण राष्ट्रीय हितों के लिए वैज्ञानिक शोध को तोड़ती-मरोड़ती हैं। इसलिए उनकी प्रबल इच्छा थी कि दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संगठन (दक्षेस) के तत्वावधान में एक ऐसा नेटवर्क खड़ा हो जो इन देशों में होने वाले प्रदूषण और मौसमी बदलाव की प्रामाणिक जानकारी एकत्रित करे और भारत इसकी अगुवाई करे। उन्होंने विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में मौसम सम्बन्धी जानकारी एकत्रित करने के लिए प्रयोगशालाएँ स्थापित करने का सुझाव दिया। इस शोधकार्य में मित्रा भारतीय सेना को भी शामिल करना चाहते थे, खास तौर पर पूर्वी हिमालय के ऊबड़-खाबड़, दूरस्थ और ऊँचाई पर स्थित उन क्षेत्रों में जहाँ वैज्ञानिक नहीं पहुँच पाते थे। उनका पक्का विश्वास था कि अच्छी नीतियों के लिए सटीक और अधिकृत आँकड़े होना अनिवार्य है। उनके अनुसार इंटर-गवर्नमेंटल पैनल ऑन क्लाइमेट चेंज (Intergovernmental Panel on Climate Change) अपने शोध में बहुत पीछे था। वे चाहते थे कि भारत प्रदूषण और गैस उत्सर्जन पर ठोस शोधकार्य करे और मौसम-परिवर्तन के मुद्दे पर उपयुक्त नीतियाँ बनाए।

1999 में मित्रा ने भारत, यूरोप, मालदीव और अमरीका के 200 से भी अधिक वैज्ञानिकों के साथ मिलकर फील्ड में छह हफ्ते का एक गहन प्रयोग किया। इसमें उन्होंने हवा में मौजूद एरोसोल (Aerosols) नामक बहुत

सूक्ष्म कणों का मौसम पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन किया। मित्रा दुनिया के उन तीन वैज्ञानिकों में से थे जिन्होंने हिन्द महासागर प्रयोग (Indian Ocean Experiment) में भाग लिया। इस प्रयोग को हिन्द महासागर में उस स्थान पर किया गया जहाँ अंटार्कटिका से आई शुद्ध हवा भारतीय उपमहाद्वीप से आई कुछ-कुछ प्रदूषित हवा से मिलती है। इस तरह हिन्द महासागर एक अनूठे अध्ययन की प्रयोगशाला बन गया। वैज्ञानिकों को भारत के क्षेत्रफल से सात गुना बड़ी गहरी धुँध उत्तरी हिन्द महासागर में दिखाई पड़ी। इस धुँध की वजह से मॉनसून के बादल बनने और वर्षा की मात्रा पर गम्भीर प्रभाव पड़ सकते थे। मित्रा ने चेतावनी दी कि एरोसोल के सूक्ष्म कणों से वर्षा और कृषि उपज पर प्रभाव पड़ सकता है और दमा बढ़ सकता है।

मित्रा ने जल संरक्षण पर विशेष बल दिया और भविष्य में राष्ट्रों के बीच पानी को लेकर युद्ध होने की सम्भावना से इन्कार नहीं किया। वे कम वर्षा वाले इलाकों में गन्ने जैसी अधिक पानी सोखने वाली फसलों को प्रोत्साहित करने वाली संकीर्ण नीतियों के कड़े आलोचक थे।

उन्होंने 200 से अधिक वैज्ञानिक शोधपत्र लिखे और कई पुस्तकों का सम्पादन किया। इनमें से कुछ उल्लेखनीय पुस्तकें हैं: *Advances in Space Exploration* (अन्तरिक्ष की खोज में नए कदम) (1979) (सम्पादित), Ionospheric Effects of Solar Flares (सौर फैलावों के आयनमण्डल पर प्रभाव) *तथा Human Influences on Atmospheric Environment* (पर्यावरण पर मानवीय प्रभाव)। वे कई वैज्ञानिक शोध पत्रिकाओं के सम्पादन मण्डल के सदस्य भी थे, जैसे – *जर्नल ऑफ एटमॉस्फीयरिक एंड टेरेस्ट्रियल फिज़िक्स (Journal of Atmospheric and Terrestrial Physics), स्पेस साइंस*

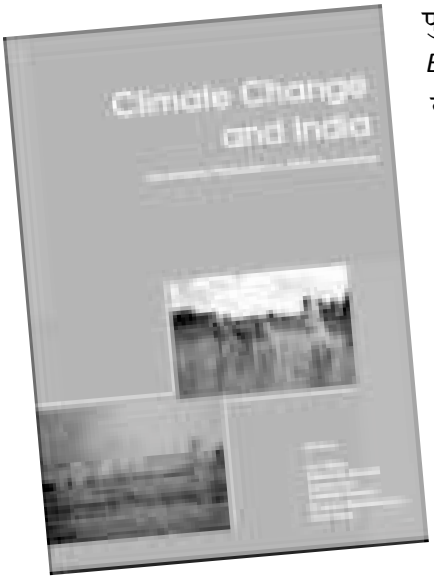

रिव्यूज़ (Space Science Reviews), *इण्डियन जर्नल ऑफ रेडियो एंड स्पेस फिज़िक्स (Indian Journal of Radio and Space Physics)* और *मौसम (Mausam)*।

मित्रा को बहुत से पुरस्कारों से सम्मानित किया गया, जिनमें 1968 में भौतिक विज्ञानों के लिए शान्तिस्वरूप भटनागर पुरस्कार और 1989 में पद्म भूषण शामिल हैं। 1988 में उन्हें लन्दन की रॉयल सोसाइटी का फैलो चुना गया। वे कई अन्य प्रतिष्ठित विज्ञान अकादमियों के सदस्य भी थे।

मित्रा ने स्वतंत्र भारत में विज्ञान द्वारा विकास के सपने को जिया। उनका देहान्त 81 वर्ष की आयु में दिल्ली में 3 सितम्बर 2007 को हुआ। वे अपने पीछे पत्नी सुनन्दा और दो बेटियाँ छोड़ गए।

एम.के. वेणु बप्पू

(1927 - 1982)

भारत में आधुनिक खगोलशास्त्र के शोध का ताना-बाना बुनने का पूर्ण श्रेय वेणु बप्पू को जाता है। उनके अथक परिश्रम की वजह से ही भारत में खगोलशास्त्र पर भावी शोधकार्य के लिए आवश्यक अधोसंरचना का निर्माण हुआ।

वेणु बप्पू का जन्म 10 अगस्त 1927 को हुआ। उनका परिवार कन्ननूर का रहने वाला था परन्तु उनके पिता हैदराबाद में स्थित निज़ामिया वेधशाला में कार्यरत थे। इसलिए वेणु बप्पू की स्कूल और महाविद्यालय की शिक्षा हैदराबाद में ही हुई। वे एक अच्छे वक्ता थे और इस कारण स्कूल में उनकी बहुत प्रशंसा होती थी। अपने महाविद्यालय में उन्होंने विज्ञान क्लब संचालित किया और महाविद्यालय की पत्रिका का सम्पादन भी किया। महाविद्यालय की फिज़िक्स एसोसिएशन के सचिव की हैसियत से उन्होंने लोकप्रिय विज्ञान के विषयों पर कई व्याख्यान आयोजित किए। 1943 में जब सी.वी. रामन ने हैदराबाद में कुछ

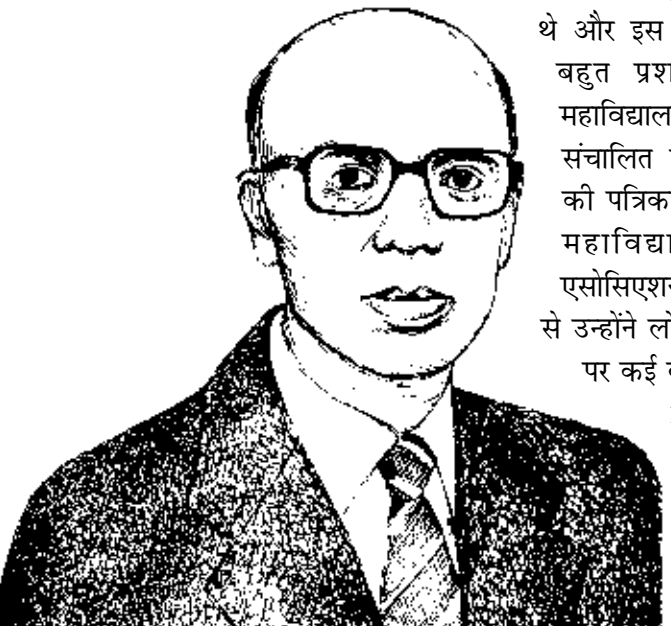

व्याख्यान दिए तो वेणु बप्पू हर रोज़ अपनी साइकिल से 16 किलोमीटर की यात्रा करके जाते थे और व्याख्यान के बाद वापस आते थे। उन्होंने एक भी व्याख्यान छूटने नहीं दिया।

वे शौकिया चित्रकार थे और उत्कृष्ट साहित्य में उनकी गहरी रुचि थी। उन्हें अँग्रेज़ी कविताओं और उर्दू के साहित्य से प्रेम था। मिर्ज़ा ग़ालिब उनके प्रिय शायर थे। महाविद्यालय में वे क्रिकेट और टेनिस के शानदार खिलाड़ी थे। एक साहसी युवा की तरह शायद उनके दिल में पायलट बनने की उमंग थी। उनकी सबसे प्रिय पुस्तक थी द *स्पिरिट ऑफ सेंट लूईस (The Spirit of St. Louis)* जो चार्ल्स लिंडबर्ग की अमर गाथा है। विज्ञान और कला, दोनों ही क्षेत्रों में वेणु बप्पू के आदर्श विख्यात वैज्ञानिक होमी भाभा थे। वेणु बप्पू की कला की झाँकी को आज भी उनके द्वारा स्थापित विभिन्न वेधशालाओं की दीवारों पर और बगीचों में देखा जा सकता है।

बचपन से ही वेणु बप्पू ने निज़ामिया वेधशाला में दूरबीनें देखी थीं। रात के आकाश के सौन्दर्य से वे बचपन से ही प्रभावित थे। महाविद्यालय में उन्होंने एक वर्णक्रमलेखी (spectrograph) का निर्माण किया। इसके लिए उन्होंने अपने शयनकक्ष की खिड़की से लगातार छह रातों तक एक 'संवेदनशील' प्लेट पर प्रकाश पड़ने दिया। 1946 में इस विषय पर उन्होंने अपना पहला वैज्ञानिक शोधपत्र प्रकाशित किया।

1948 में एम.एससी. की पढ़ाई खत्म करने के बाद वे अपनी आजीविका के लिए खगोलशास्त्र का क्षेत्र चुनना चाहते थे, परन्तु उस समय भारत में इस पेशे के लिए अवसर बहुत कम थे। संयोगवश उसी समय इंग्लैण्ड के खगोलशास्त्री हैरल्ड स्पेंसर जोंस और हार्वर्ड विश्वविद्यालय के प्रोफेसर हारलो शेपली भारत की यात्रा पर आए थे। वेणु बप्पू ने उनसे हैदराबाद में मुलाकात की। शेपली की मदद से 1949 में हैदराबाद सरकार द्वारा दिए वज़ीफे के कारण वेणु बप्पू हार्वर्ड विश्वविद्यालय में उच्च शिक्षा के लिए चले गए। हार्वर्ड में वेणु बप्पू ने अपने आपको बहुत काबिल और प्रेरक लोगों के बीच पाया। हार्वर्ड आने के चन्द महीनों के भीतर ही वेणु बप्पू ने एक नया पुच्छल तारा खोज निकाला। आकाश के सामान्य चित्रों को देखते हुए उन्हें एक फोटो-प्लेट पर कुछ अलग-सा नज़र आया। इस प्रकार

अपने साथियों के साथ वेणु ने इस नए पुच्छल तारे को खोजा, जिसे उसको खोजने वालों के नाम पर बप्पू–बोक–न्यूकिर्क नाम दिया गया। उनकी इस खोज के लिए एस्ट्रॉनॉमिकल सोसाइटी ऑफ द पॅसिफिक (Astronomical Society of the Pacific) ने वेणु बप्पू को डोनोहोए कॉमेट पदक से सम्मानित किया।

1951 में पीएच.डी. समाप्त करने के बाद वेणु बप्पू पहले भारतीय थे जिन्हें खगोलशास्त्र पर शोधकार्य के लिए प्रतिष्ठित कारनेगी मेलन फैलोशिप मिली। इस वजह से उन्हें माउंट पालोमार स्थित दुनिया की सबसे बड़ी, 200 इंच व्यास की दूरबीन पर काम करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। यहाँ उन्होंने तारा–वर्णक्रम–विज्ञान की चुनौतीपूर्ण समस्याओं का हल खोजने का प्रयास किया। वौल्फ–रेयत (Wolf Rayet) नामक तारों पर उनके गहन शोध ने उन्हें पूरे विश्व में इस विषय के विद्वान के रूप में स्थापित कर दिया।

1953 में वेणु बप्पू भारत लौटे। उस समय भारत में खगोलशास्त्र पर शोध करने की सुविधाएँ बेहद पिछड़ी हुई थीं और देश में उपलब्ध सबसे बड़ी दूरबीन मात्र 15 इंच व्यास का दूरविक्षण यंत्र (refractor) था। 1954 में वेणु बप्पू ने वाराणसी स्थित वेधशाला में प्रमुख खगोलशास्त्री के रूप में काम शुरू किया। वेधशाला बेहतर स्थान पर ले जाने के लिए उन्होंने उत्तर प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री को राज़ी किया। वेणु बप्पू ने इसके लिए नैनीताल के पास एक उपयुक्त पहाड़ी चुनी। कुछ ही सालों में उन्होंने वहाँ कई युवा एवं प्रेरित वैज्ञानिकों को प्रशिक्षित किया जिन्होंने बाद में देश में खगोलशास्त्र के विकास में अहम भूमिका निभाई।

1960 में भारत सरकार के आग्रह पर वेणु बप्पू 170 साल पुरानी कोडैकनाल वेधशाला के सबसे युवा निदेशक बने। ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने 1792 में इसे मद्रास में स्थापित किया था और फिर उसे 1899 में कोडैकनाल स्थानान्तरित किया था। इससे पहले प्रतिष्ठित खगोलशास्त्री, जैसे एन.आर. पोगसन और 'एवरशेड प्रभाव' (Evershed Effect) के लिए प्रसिद्ध जॉन एवरशेड, इस संस्था के निदेशक रह चुके थे। वेणु बप्पू ने यहाँ पर उपकरण निर्माण और प्रकाश विज्ञान की एक कार्यशाला स्थापित की। इसमें कई छोटी दूरबीनें और वर्णक्रमलेखी निर्मित हुए। उन्होंने पुरानी सौर

दूरबीनों में जटिल इलेक्ट्रॉनिकी का समावेश कर सूर्य का अध्ययन करने के लिए उनकी क्षमता को बढ़ाया। कोडैकनाल में खगोलशास्त्र पर शोध कार्य करने वाली एक सम्पूर्ण संस्था और एक वेधशाला के वेणु बप्पू के सपने ने आकार लेना शुरू किया।

वेणु बप्पू ने जल्द ही महसूस किया कि पूरे साल तारों का अध्ययन करने के लिए कोडैकनाल वेधशाला का स्थान अनुपयुक्त था। नए स्थान की खोज में वेणु बप्पू ने कन्याकुमारी से लेकर तिरुपति तक का भ्रमण किया और अन्त में वे तमिलनाडु में जवडी हिल नामक स्थान पर पहुँचे। यहाँ उन्हें एक पठार मिला जो चारों ओर से पहाड़ियों से घिरा हुआ था। कावालूर नामक गाँव के पास स्थित यह स्थान खगोलशास्त्रीय अवलोकनों के लिए उपयुक्त था। वेणु बप्पू ने कावालूर में 38 इंच व्यास की दूरबीन स्थापित की। बाद में इसी वेधशाला में उन्होंने 100 से.मी. व्यास की कार्ल ज़ाईस कम्पनी की दूरबीन लगाई।

1971 में कोडैकनाल और कावालूर वेधशालाओं ने सम्मिलित रूप से एक स्वशासी शोध केन्द्र की स्थापना की – भारतीय ताराभौतिकी संस्थान (Indian Institute of Astrophysics)। इस संस्थान ने देश में खगोलशास्त्र के क्षेत्र में अनुसन्धान का महत्वपूर्ण कार्य किया। इसका एक सैद्धान्तिक समूह और दूसरा कार्यकारी समूह था जिसका काम देश में बड़ी दूरबीनों का निर्माण करना था। भारतीय ताराभौतिकी संस्थान की शुरुआत रामन शोध संस्थान में हुई किन्तु जल्द ही उसे कोरमंगला, बैंगलोर में उसके अपने परिसर में स्थानान्तरित कर दिया गया। वेणु बप्पू ने भारतीय ताराभौतिकी संस्थान को विश्व का एक अग्रणी शोध केन्द्र बनाने के लिए बहुत परिश्रम किया। कावालूर में कार्ल ज़ाईस दूरबीन लगने के 15 दिनों के अन्दर ही एक अनूठा और विरल तारा प्रच्छादन (occultation) देखा गया।

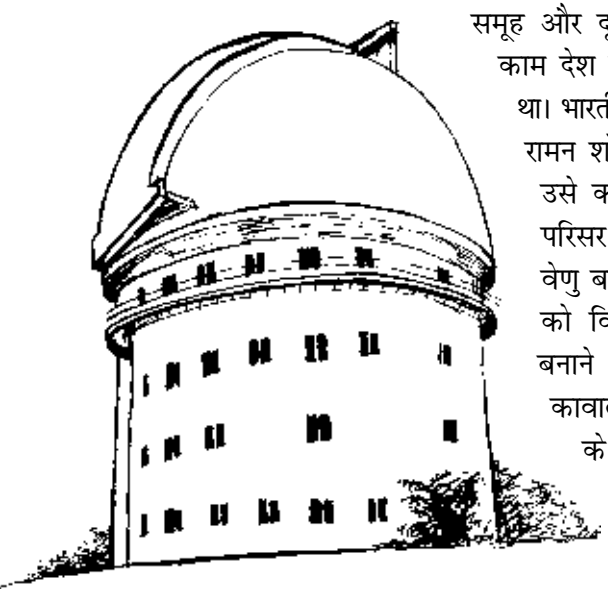

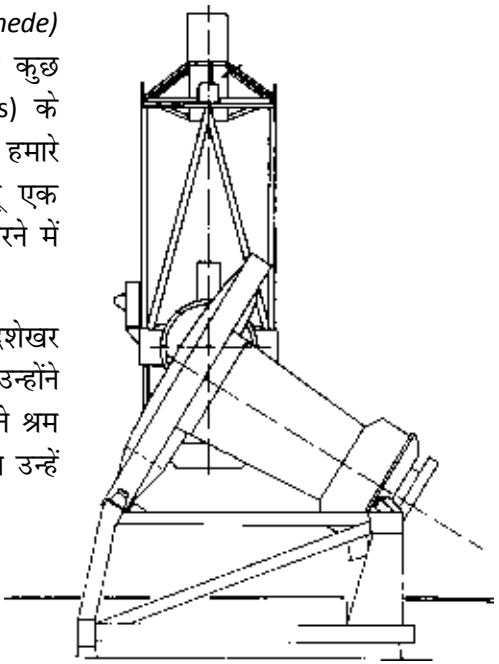

इससे बृहस्पति ग्रह के चन्द्रमा गैनीमीड *(Ganymede)* में वायुमण्डल होने का प्रमाण मिला। इसके कुछ वर्ष पश्चात् इसी दूरबीन से वरुण (Uranus) के वलय दिखाई दिए जिनसे ब्रह्माण्ड के बारे में हमारे ज्ञान में इज़ाफा हुआ। इस प्रकार वेणु बप्पू एक विश्वस्तरीय क्षमता की वेधशाला स्थापित करने में सफल हुए।

1970 में नोबल पुरस्कार विजेता एस. चन्द्रशेखर भारतीय ताराभौतिकी संस्थान देखने आए और उन्होंने वेणु बप्पू के प्रयासों की खूब प्रशंसा की। इतने श्रम और लगन के साथ जीवन बिताने की कीमत उन्हें चुकानी पड़ी और बायपास सर्जरी के बाद 19 अगस्त 1982 को 55 वर्ष की अल्पायु में ही वेणु बप्पू का निधन हो गया। अपनी मृत्यु से कुछ समय पहले ही वे इंटरनेशनल एस्ट्रॉनॉमिकल यूनियन (International Astronomical Union) के अध्यक्ष पद के लिए चुने गए थे। वेणु बप्पू के सपनों की 234 से.मी. व्यास की दूरबीन को उनके देहान्त के बाद तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गाँधी ने राष्ट्र को समर्पित किया और कावालूर वेधशाला का नाम उनके सम्मान में वेणु बप्पू वेधशाला रखा गया।

वेणु बप्पू अपनी बहुमुखी प्रतिभा के कारण बहुत से पुरस्कारों से सम्मानित हुए। 1970 में उन्हें भौतिक विज्ञानों के लिए शान्तिस्वरूप भटनागर पुरस्कार और 1977 में भौतिकी का हरिओम आश्रम पुरस्कार मिला। 1981 में भारत सरकार ने उन्हें पद्म भूषण से सम्मानित किया। अपने एक भाषण में वेणु बप्पू ने कहा था, "बार-बार हम देखते हैं कि कोई एक व्यक्ति आता है और वो भ्रम और अव्यवस्था की स्थिति को बदलकर उसे तर्कसंगत, सुन्दर और सरल बना जाता है।" इन शब्दों को बयान करते समय शायद वेणु बप्पू को इस बात का अन्दाज़ा नहीं था कि वे खुद अपनी ज़िन्दगी का वर्णन कर रहे हैं।

पी.के. सेठी

(1927 - 2008)

मैंने अक्सर हमारे युवा चिकित्सकों को यह सलाह दी है कि वे ढेरों पैसे बनाने के चक्कर में न पड़ें – मरीज़ों की कृतज्ञता ही उनके लिए पर्याप्त होनी चाहिए।

– पी.के. सेठी

दुनिया भर के युद्ध क्षेत्रों में – अफगानिस्तान, श्रीलंका से लेकर रवाण्डा तक – बहुत से लोगों ने भारत के शहर जयपुर का नाम सुना होगा। राजस्थान की राजधानी जयपुर का नाम युद्ध क्षेत्रों में एक असाधारण कृत्रिम पैर *जयपुर-फुट* (Jaipur Foot) के कारण मशहूर है। बारूदी सुरंगों से विकलांग हुए लाखों लोगों के लिए यह किफायती कृत्रिम पैर एक क्रान्तिकारी वरदान साबित हुआ है। जयपुर-फुट का डिज़ाइन डॉक्टर प्रमोद कर्ण सेठी ने अपने सहकर्मी के सहयोग से किया था।

प्रमोद का बचपन वाराणसी में बीता। उनके पिता डॉ. निखिल कर्ण सेठी बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में भौतिक विज्ञान पढ़ाते थे जहाँ विद्वता, सादगी, बलिदान और राष्ट्र-सेवा जैसे मूल्यों पर ज़ोर दिया जाता था। उनके परिवार में गाँधीजी के आदर्शों का बोलबाला था। डॉ. सेठी ने भौतिक विज्ञान पर हिन्दी में पहली पाठ्यपुस्तक लिखी और उसके बाद उन्होंने कई वैज्ञानिक ग्रन्थों का अँग्रेज़ी से हिन्दी में अनुवाद किया। शादी में दहेज देने की बजाय उन्होंने अपनी सभी बेटियों को उच्च शिक्षा के लिए प्रोत्साहित

किया। 1930 में डॉ. सेठी आगरा महाविद्यालय में पढ़ाने लगे, इसलिए प्रमोद की शिक्षा भी वहीं हुई। प्रमोद सेंट जॉन्स स्कूल में पढ़े। बाद में उन्होंने एम.बी.बी.एस. और एम.एस. की पढ़ाई सरोजिनी नायडू मेडिकल कॉलेज, आगरा से पूरी की। अपनी विलक्षण प्रतिभा के कारण 1954 में उन्हें एडिनबर्ग से रॉयल कॉलेज ऑफ सर्जन्स (Royal College of Surgeons) की फैलोशिप दी गई।

प्रमोद का प्रशिक्षण एक शल्यचिकित्सक के रूप में हुआ था परन्तु वे संयोग से हड्डी-रोग के क्षेत्र में आ गए। एक उच्चस्तरीय समिति जयपुर के सवाई माधो सिंह अस्पताल के मुआयने के लिए आने वाली थी। अस्पताल में हड्डी-रोग विभाग ही नहीं था, इसलिए प्राचार्य ने प्रमोद से इस नए विभाग को शुरू करने के लिए कहा। उनके इस कार्य के कितने दूरगामी परिणाम होंगे इसका अन्दाज़ा शायद प्राचार्य को भी नहीं था। बाद में सेठी ने एक हल्का, टिकाऊ और कम-लागत का कृत्रिम पैर बनाया जिसने दुनिया भर में लाखों लोगों का जीवन बदल दिया।

जयपुर-फुट का आविष्कार एक अनूठी जोड़ी ने किया: एक पेशेवर शल्यचिकित्सक डॉ. प्रमोद कर्ण सेठी, जो ब्रिटेन के रॉयल कॉलेज ऑफ सर्जन्स के फैलो थे, और उनके साथी रामचन्द्र शर्मा, जो एक दक्ष शिल्पी थे और कभी स्कूल नहीं गए थे। दोनों 30 वर्ष पूर्व पहली बार जयपुर के सवाई माधो सिंह अस्पताल में ही मिले। तब डॉ. सेठी वहाँ बैसाखियों के माध्यम से विकलांग मरीज़ों की सहायता कर रहे थे और शर्मा कुष्ठरोगियों को हस्तशिल्प बनाना सिखा रहे थे।

सेठी पोलियो पीड़ितों और पैर-कटे मरीज़ों के लिए उपयुक्त, कम कीमत वाले उपकरण चाहते थे। कृत्रिम अंग बनाने के निकटतम केन्द्र बहुत दूर पुणे या मुम्बई में थे, जहाँ केवल अमीर लोग ही जा सकते थे। इसलिए सेठी ने अस्पताल के प्रांगण में ही विकलांगों

के लिए कुछ स्थानीय उपकरण बनाने की सोची। पुणे स्थित सेना अंग केन्द्र कृत्रिम पैर बनाता था, जो बहुत भारी और कड़ा था और उसे जूते से ढँककर रखना पड़ता था। लोग मजबूरी में उसे खरीदते पर जल्द ही उसे त्याग देते थे। इसमें जूता सबसे बड़ी अड़चन था क्योंकि भारत में लोग खेतों, घरों और पूजास्थलों पर नंगे पैर जाने के आदी होते हैं। यह विदेशी पैर महँगा होने के साथ-साथ पानी और मिट्टी के सम्पर्क में आकर बहुत जल्दी खराब हो जाने वाला था। उसमें एक और कमी थी – वह लचीला नहीं था। विदेशी पैर लगाकर न तो शौचालय में बैठा जा सकता था और न ही पालथी मारकर बैठा जा सकता था।

सेठी को श्रीलंका में बने एक डिज़ाइन से प्रेरणा मिली। उसमें कृत्रिम टाँग को रबर से ढँका गया था। इसे पहनकर आम किसान पानी से भरे धान के खेतों में काम कर सकता था। सेठी ने एक स्थानीय कारीगर से गन्धक डालकर कड़ा किए हुए (vulcanized) रबर के एक कृत्रिम पैर का नमूना बनवाया। शुरू का पैर भारी और कड़ा था, पर धीरे-धीरे उसमें सुधार करते

हुए उसके खोल को हल्की स्पंज-रबर से भरा गया। बाद में एड़ी में मॉइक्रो-सेल्युलर रबर लगाया गया और ऊपर की ओर पच्चर काटकर सभी दिशाओं में मुड़ सकने वाला एक जोड़ बनाया गया। एक मरीज़ के भाई ने बाहरी रबर को बिलकुल चमड़ी जैसा रंग दिया। इस प्रकार बना पहला जयपुर-फुट।

जयपुर-फुट को पहनकर किए गए प्रयोगों द्वारा उसके टिकाऊपन, उपयुक्त कीमत और सहूलियत की पुष्टि हुई। चलते समय जब चौड़ा तलवा ज़मीन को स्पर्श करता था तो पहनने वाले को सुरक्षा की अनुभूति होती थी। रबर के बाहरी खोल के कारण यह कृत्रिम पैर टूट-फूट से मुक्त था। अगर उसकी सतह खुरच जाती तो साइकिल के पंचर जैसे पैबन्द लगाकर उसकी मरम्मत की जा सकती थी।

1970 में डॉक्टर सेठी ने जयपुर-फुट पर पहला शोधपत्र लिखा। 1974 में उन्हें स्विट्ज़रलैण्ड में कृत्रिमांगस्थापन शल्यचिकित्सा (prosthetics) पर हो रहे प्रथम विश्व सम्मेलन में मुख्य वक्ता के रूप में आमंत्रित किया गया।

1975 में बिहार के एक पूर्व-मरीज़ श्री अर्जुन अग्रवाल, जो एक धनी किसान थे, ने एक बड़ा अनुदान दिया, जिससे अस्पताल में पाँच मंज़िला पुनर्वास केन्द्र का निर्माण सम्भव हो पाया। उसके बाद राज्य सरकार और निजी दाताओं ने भी अनुदान दिए। किस प्रकार मरीज़ों का पुनर्वास केन्द्र में स्वागत होता है और उनका इलाज किया जाता है, यह वर्णन पढ़ने लायक है: "मरीज़ देश के सभी हिस्सों से बिना खबर दिए वहाँ पहुँचते हैं। अक्सर उनके साथ कोई रिश्तेदार होता है। सबसे पहले उन्हें कहा जाता है कि वे सुरक्षित अस्पताल पहुँचने की खबर टेलीफोन से अपने घर वालों को दे दें। अस्पताल में भोजन, आवास और सारा उपचार मुफ्त होता है। प्रत्येक मरीज़ को एक साधारण थैला दिया जाता है जिसमें साबुन, मंजन, ब्रुश, थाली, मग और एक तौलिया शामिल होता है। इन सब वस्तुओं से लैस होकर मरीज़ पुनर्वास केन्द्र के आँगन में प्रवेश करता है। आँगन में पहले ही बहुत से विकलांग होते हैं – वे उस नए मरीज़ को समझते हैं, उसकी निजता का सत्कार करते हैं और इस सामूहिक अनुभव से मरीज़ के आत्म-विश्वास और आत्म-सम्मान दोनों में इज़ाफा होता है। उपचार पूरा

होने के बाद मरीज़ को घर जाने के लिए ट्रेन का मुफ्त टिकट और यात्रा के लिए भोजन का एक पैकेट भी दिया जाता है'' (मैगसेसे पुरस्कार के वाचक-पत्र से उद्धरण)।

नए पैर का नाप लेने और उसे लगाने में लगभग एक घण्टे का समय लगता है। हर मरीज़ की विशिष्ट ज़रूरतों के हिसाब से ही उसका पैर बनाया जाता है। जयपुर-फुट को पहनने के बाद व्यक्ति आसानी से खेत में काम कर सकता है, पेड़ पर चढ़ सकता है, रिक्शा चला सकता है, ऊबड़-खाबड़ ज़मीन पर चल सकता है और यहाँ तक कि नृत्य भी कर सकता है। पश्चिमी देशों में विकलांग मरीज़ अक्सर बूढ़े लोग होते हैं, जबकि भारत में ऐसे मरीज़ अक्सर युवा और गरीब प्रवासी मज़दूर होते हैं।

सुधा चन्द्रन

1978 में डॉ. सेठी को उत्कृष्ट चिकित्सा शिक्षक के रूप में बी.सी. रॉय पुरस्कार से सम्मानित किया गया। 1981 में उन्हें भारत सरकार ने पद्मश्री से अलंकृत किया। उसी वर्ष उन्हें सामुदायिक सेवा के लिए मैगसेसे पुरस्कार से भी सुशोभित किया गया।

डॉ. सेठी उच्च कोटि के विद्वान थे। उनकी पेड़ों तथा फूलों में गहरी रुचि थी। उन्हें पुस्तकों से प्रेम था और वे भारतीय शास्त्रीय राग, पश्चिमी जैज़, रॉक और लोक संगीत सुनना पसन्द करते थे। वे कभी किसी सामाजिक क्लब के सदस्य नहीं बने और न ही कभी वे छुट्टी पर गए। वे खाली समय अपने परिवारजनों – पत्नी सुलोचना, तीन

बेटियों और एक बेटे – के साथ घर पर ही बिताना पसन्द करते थे। 6 जनवरी 2008 को 80 वर्ष की आयु में डॉ. सेठी का देहान्त हुआ।

जयपुर–फुट पर डेविड सुज़ूकी ने कैनेडियन ब्रॉडकास्टिंग कॉर्पोरेशन (Canadian Broadcasting Corporation) के लिए एक वृत्तचित्र का निर्माण किया। 'नाचे मयूरी' नामक हिन्दी फिल्म ने जयपुर–फुट को सदा के लिए अमर कर दिया है। यह सदाबहार फिल्म एक प्रसिद्ध शास्त्रीय नर्तकी सुधा चन्द्रन के बारे में है। प्रसिद्धि के शिखर की ओर बढ़ती हुई इस नृत्याँगना को एक हादसे में अपना एक पैर खोना पड़ा था। उन्होंने जयपुर–फुट लगाया, फिर से नृत्य किया और सफलता की बुलन्दियों को छुआ।

शिवरामकृष्णन चन्द्रशेखर

(1930 - 2004)

आजकल द्रव स्फटिक (liquid crystals) अनेक इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों में उपयोग किए जा रहे हैं – मोबाइल फोन से लेकर बड़ी स्क्रीन वाले टेलीविज़न तक। पहले वाली भारी-भरकम कैथोड-रे ट्यूबें अब लुप्त हो गई हैं और उनका स्थान अब द्रव स्फटिकों ने ले लिया है। द्रव स्फटिकों के क्षेत्र में विकास का श्रेय शिवरामकृष्णन चन्द्रशेखर के पथप्रदर्शक शोधकार्य को जाता है। लोग प्यार से उन्हें चन्द्र पुकारते थे।

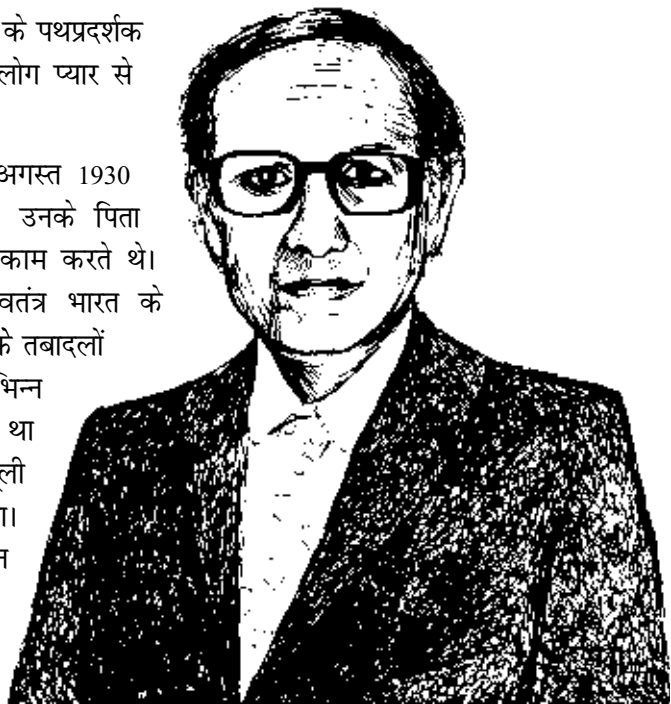

चन्द्रशेखर का जन्म 6 अगस्त 1930 को कोलकाता में हुआ। उनके पिता अँग्रेज़ सरकार के लिए काम करते थे। पदोन्नति के बाद वे स्वतंत्र भारत के महालेखाकार बने। पिता के तबादलों के कारण परिवार को विभिन्न शहरों में जाना पड़ता था जिससे चन्द्रशेखर की स्कूली शिक्षा में विघ्न पड़ता था। चन्द्रशेखर को ये परिवर्तन

अच्छे नहीं लगते थे, इसके बावजूद वे अपनी कक्षा में अच्छे अंक लाते। चन्द्रशेखर एक नामी-गिरामी परिवार से थे। उनकी माँ सीतालक्ष्मी विज्ञान में नोबल पुरस्कार पाने वाले पहले भारतीय सी.वी. रामन की छोटी बहन थीं। चन्द्रशेखर के छोटे भाई पंचरत्नम और बड़े भाई एस. रामशेषन भी प्रसिद्ध वैज्ञानिक थे। 1951 में चन्द्रशेखर एम.एससी. की परीक्षा में नागपुर विश्वविद्यालय में सर्वप्रथम आए। उन्होंने दो स्वर्ण पदक जीते और वहीं से पीएच.डी. की।

उसके बाद चन्द्रशेखर बैंगलोर आए और वहाँ उन्होंने नवनिर्मित रामन शोध संस्थान में काम प्रारम्भ किया। वे अपने विख्यात मामा सी.वी. रामन के पहले शोध छात्र थे। उन दोनों के बीच का सम्बन्ध गुरु-शिष्य जैसा था, न कि मामा-भानजे का। उसी दौरान एक दिन उनके बड़े भाई प्रोफेसर रामशेषन के घर पर चन्द्रशेखर की भेंट अपनी भावी पत्नी इला के साथ हुई। चन्द्रशेखर को उस समय छोटा-सा अनुसन्धान अनुदान मिलता था, मगर उसमें से भी पैसे बचाकर उन्होंने एक मोटरसाइकिल खरीदी जिसकी पिछली सीट पर इला को बैठाकर वे सैर को जाते। इससे वहाँ के रुढ़िवादी समाज में काफी हलचल मची। दुर्भाग्यवश एक दुर्घटना में चन्द्रशेखर को सिर में चोट लगी जिससे जीवन भर वे सिरदर्द से पीड़ित रहे। चन्द्रशेखर और इला भिन्न भौगोलिक इलाकों से थे और अलग-अलग भाषाएँ बोलते थे, इसलिए विवाह से पहले कुछ समस्याएँ अवश्य आईं। परन्तु जल्द ही उनका हल भी निकल आया।

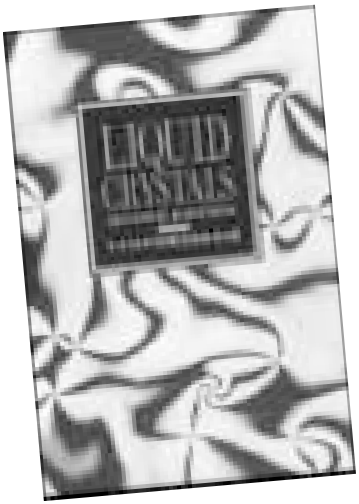

विवाह के तुरन्त बाद चन्द्रशेखर को एक वज़ीफा मिला और वे इंग्लैण्ड की प्रख्यात कैवेंडिश प्रयोगशाला में शोध करने चले गए। वहाँ उन्होंने स्फटिकों पर एक्स-रे प्रकीर्णन (scattering) में केम्ब्रिज विश्वविद्यालय से डॉक्टरेट की एक और डिग्री हासिल की। 1961 में भारत वापस लौटने पर वे मैसूर विश्वविद्यालय के

भौतिक विज्ञान विभाग के पहले विभागाध्यक्ष बने। वहाँ भौतिक विज्ञान विभाग एक बियाबान जंगल में स्थित था। इस ज़मीन की मालकिन मैसूर की राजकुमारी लीलावती थीं। आसपास के जंगल की सफाई हो जाने के बावजूद इस इलाके में जंगली सियार, उल्लू और तेन्दुए भी आते-जाते थे। यहाँ पर चन्द्रशेखर की रुचि द्रव स्फटिकों में पैदा हुई। इससे पहले यह शोध का एक उपेक्षित क्षेत्र था और बहुत कम वैज्ञानिक ही द्रव स्फटिकीय पदार्थों के बारे में कुछ जानते थे। चन्द्रशेखर ने बाद में इस बारे में लिखा, "उस समय इस विषय के बारे में मेरी जानकारी बहुत कम थी। मैं इसके बारे में जो कुछ थोड़ा-बहुत जानता था वह मैंने 10 साल पहले 1930 में छपी किताबों में पढ़ा था।" फिर भी चन्द्रशेखर ने दृढ़प्रतिज्ञ होकर अपने शोध का क्षेत्र ठोस अवस्था (solid state) से बदलकर द्रव स्फटिक किया।

ब्रिटेन के केम्ब्रिज विश्वविद्यालय और यूनिवर्सिटी कॉलेज, लन्दन में कुछ समय बिताने के बाद 1971 में चन्द्रशेखर बैंगलोर के रामन शोध संस्थान में आए। वहाँ उन्होंने अपने कुछ पूर्व छात्रों की सहायता से एक द्रव स्फटिक प्रयोगशाला स्थापित की जिसकी प्रसिद्धी जल्द ही दूर-दूर तक फैली। चन्द्रशेखर को इस बात का अहसास हुआ कि अत्याधुनिक शोधकार्य के लिए नए पदार्थों के निर्माण की क्षमता अत्यावश्यक होगी। इसलिए उन्होंने एक कार्बनिक रसायन प्रयोगशाला भी स्थापित की। जल्द ही चन्द्रशेखर की प्रयोगशाला अपने मौलिक शोधकार्य के कारण पूरे विश्व में द्रव स्फटिक पर अनुसन्धान का एक अग्रणी केन्द्र बन गई। 1977 में जब उन्होंने अपने सहकर्मियों के साथ मिलकर नए प्रकार के एक द्रव स्फटिक की खोज की जो नए तरह के अणुओं का बना था, तो चन्द्रशेखर अपने वैज्ञानिक कैरियर के शिखर पर पहुँच गए। इन अणुओं का

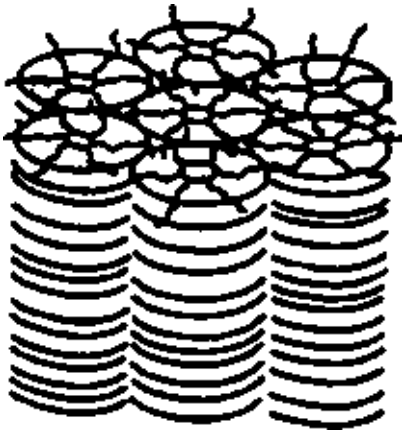

बेलनाकार चकती द्रव स्फटिक की संरचना

आकार चकतियों जैसा था। ये पहले खोजे गए बेलनाकार अणुओं से भिन्न थे। इस खोज से चन्द्रशेखर को अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति मिली। इस खोज का समाचार *प्रमाण* नामक वैज्ञानिक शोधग्रन्थ में पहली बार छपा। द्रव स्फटिक के क्षेत्र में यह पर्चा आज भी सबसे अधिक उल्लेखित होने वाले पर्चों में से है।

अब तक चकती के आकार वाले लगभग 1,500 यौगिकों को प्रयोगशालाओं में कृत्रिम तरीकों से बनाया जा चुका है, और उनके भौतिक व रासायनिक गुणधर्मों पर 2,000 से अधिक शोधपत्र लिखे जा चुके हैं। इन नए पदार्थों को नई तकनीकों के अनुरूप ढाला जा रहा है जिनमें ज़ेरोग्राफी, सौर सेल, ऑप्टिकल स्टोरेज डिवाइसिज़ (जैसे कॉम्पेक्ट डिस्क, डीवीडी इत्यादि) और हाइब्रिड कम्प्यूटर चिप शामिल हैं।

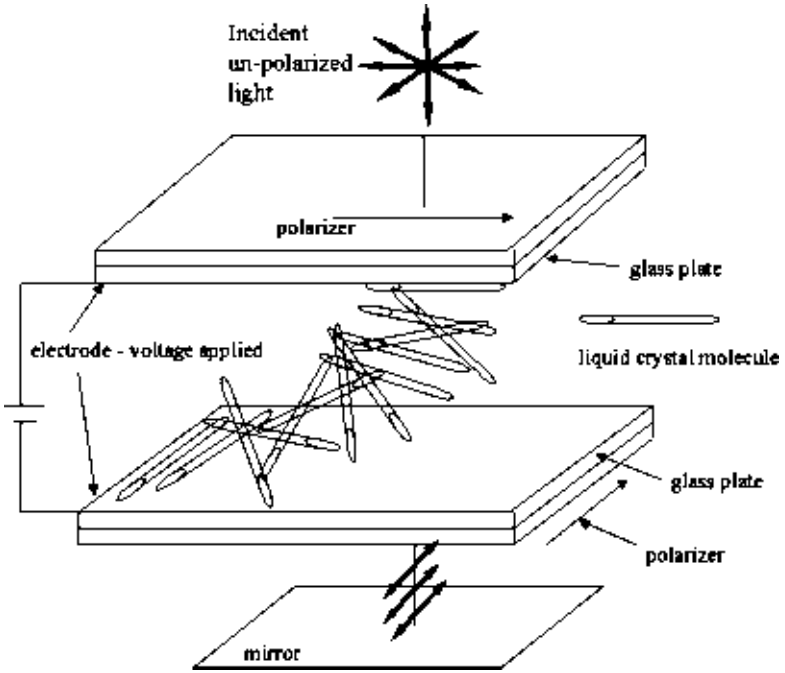

द्रव स्फटिक का उपयोग घड़ी, कम्प्यूटर मॉनिटर और टीवी स्क्रीन में होता है।

अन्य चीज़ों के साथ-साथ अब द्रव स्फटिक जीव वैज्ञानिक संरचनाओं जैसे कि जीवित ऊतकों को समझने में मदद करते हैं, और यह ज्ञान जीव वैज्ञानिक झिल्लियों को समझने के लिए महत्वपूर्ण है। इसलिए जीवशास्त्री, औषधि विज्ञानी और चिकित्सा शोधकर्ता भी द्रव स्फटिकों के अनुसन्धान में गहरी रुचि रखते हैं। वे सब चन्द्रशेखर के काम के आभारी हैं।

1977 में केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस ने चन्द्रशेखर की पुस्तक *लिक्विड क्रिस्टल्स (Liquid Crystals)* प्रकाशित की। यह इस विषय पर अनुसन्धान करने वाले किसी भी छात्र के लिए एक धर्मग्रन्थ के समान है। इस पुस्तक का रूसी एवं जापानी भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। इस पुस्तक का संशोधित और विस्तृत संस्करण 1992 में छपा।

चन्द्रशेखर ने कई अन्तर्राष्ट्रीय समारोहों का आयोजन भी किया जिनमें से एक 1973 में रामन शोध संस्थान की रजत जयन्ती के उपलक्ष्य में आयोजित किया गया था। 1990 में रामन शोध संस्थान से सेवानिवृत्ति के बाद चन्द्रशेखर ने भारत इलेक्ट्रॉनिक्स लिमिटेड द्वारा उपलब्ध कराई एक इमारत में सेंटर फॉर लिक्विड क्रिस्टल रिसर्च (Centre for Liquid Crystal Research) की शुरुआत की।

चन्द्रशेखर की वैज्ञानिक उपलब्धियों के कारण उन्हें बहुत से पुरस्कारों से सम्मानित किया गया। भारत की तीनों वैज्ञानिक अकादमियों ने उन्हें अपना फैलो बनाया। 1983 में उन्हें रॉयल सोसाइटी, इंस्टिट्यूट ऑफ फिज़िक्स (लन्दन) और थर्ड वर्ल्ड एकॅडमी ऑफ साइंसेज़ की फैलोशिप प्रदान की गई। 1990-92 में वे इंटरनेशनल द्रव स्फटिक सोसाइटी (International Liquid Crystal Society) के अध्यक्ष बने और इस संस्था की पत्रिका *मॉलिक्यूलर क्रिस्टल्स एंड लिक्विड क्रिस्टल्स (Molecular Crystals and Liquid Crystals)* का उन्होंने दो दशकों से ज़्यादा समय तक सम्पादन किया। उन्हें कई पुरस्कार मिले – शान्ति स्वरूप भटनागर पुरस्कार (1972), भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी के होमी भाभा (1987) तथा मेघनाद साहा पदक (1992), रॉयल मेडल (1994), यूनेस्को का नील्स बोह्र स्वर्ण पदक (1998) और भारत सरकार का पद्म भूषण सम्मान (1998)।

बीमारी की वजह से उन्हें ज़रा हल्का काम करने की हिदायत दी गई। इसलिए वे घर पर ही आराम करते और आगन्तुकों से मिलकर खुश होते थे। जैसे-जैसे उनकी सेहत में सुधार होता गया, वे पुनः उत्साह के साथ समारोहों और बैठकों में भाग लेने की तैयारी करने लगे। दुर्भाग्यवश 7 मार्च 2004 को उनका देहान्त हो गया। अपने पीछे वे अपनी पत्नी इला, बेटे अजीत और बेटी इन्दिरा को छोड़ गए।

अनिल अग्रवाल

(1947 - 2002)

अगर हम गरीबों के लिए सोचते हैं तो हम सकल घरेलू उत्पाद (ग्रॉस नेशनल प्रोडक्ट) द्वारा सकल प्राकृतिक उत्पाद (ग्रॉस नेचर प्रॉडक्ट) का विनाश नहीं होने दे सकते।

– अनिल अग्रवालः वर्ल्ड वाइल्डलाइफ फण्ड, लन्दन, अक्तूबर 8, 1985

अनिल अग्रवाल भारत के एक प्रमुख पर्यावरणविद् थे। उन्होंने पर्यावरण की समस्या को शायद पहली बार गरीबों के नज़रिए से देखा। तेज़ी से बढ़ती उनकी आबादी के कारण गरीबों पर पर्यावरण अवनति और जंगलों के नाश का आरोप लगाया जाता था। अग्रवाल ने इन अवधारणाओं को चुनौती दी। उन्होंने महसूस किया कि पर्यावरण संरक्षण के दायित्व में गरीबों का बड़ा हिस्सा है।

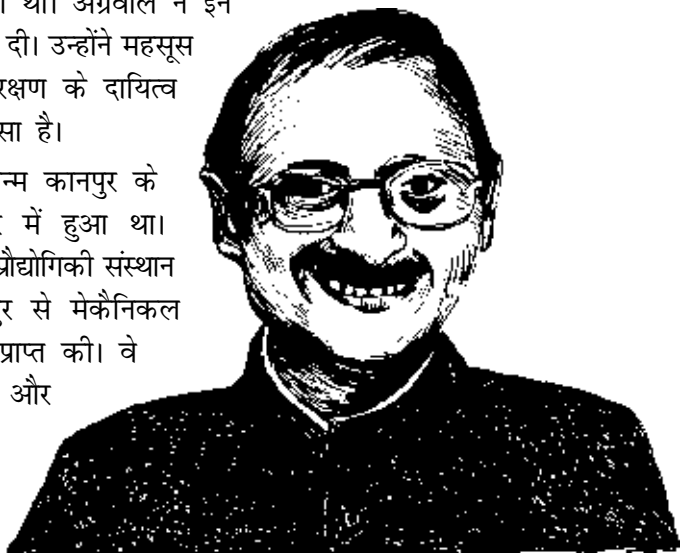

अनिल अग्रवाल का जन्म कानपुर के एक व्यापारिक परिवार में हुआ था। 1970 में उन्होंने भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (आई.आई.टी.), कानपुर से मेकैनिकल इंजीनियरिंग की डिग्री प्राप्त की। वे बहुत ओजस्वी वक्ता थे और

आई.आई.टी. में छात्रों के जिमखाना के अध्यक्ष चुने गए थे। अनिल अग्रवाल प्रखर बुद्धि एवं गहन निष्ठा वाले व्यक्ति थे और उन्होंने ये लक्षण छोटी उम्र में ही दिखाना शुरू कर दिए थे। पढ़ाई खत्म करने के बाद वे आई.आई.टी. के अन्य छात्रों की तरह अमरीका नहीं गए। उन्होंने *हिन्दुस्तान टाइम्स* नामक अखबार में विज्ञान संवाददाता के रूप में काम करना शुरू किया। उनमें जटिल विचारों को सरलता और स्पष्टता से पेश करने की क्षमता थी। जल्द ही लोग उनकी उत्कृष्ट लेखन शैली का लोहा मानने लगे।

रुस्तम वानिया द्वारा बनाया अनिल अग्रवाल का कार्टून

1970 के दशक के मध्य में वे इंग्लैण्ड गए और वहाँ पर्यावरण की महाधिवक्ता और *ओनली वन अर्थ (Only One Earth/* मात्र एक पृथ्वी) पुस्तक की लेखिका बारबरा वार्ड के प्रभाव में आए। पर्याप्त अन्तर्राष्ट्रीय अनुभव प्राप्त करने के बाद अग्रवाल 1980 के दशक की शुरुआत में नई दिल्ली वापस आए और उन्होंने विज्ञान एवं पर्यावरण केन्द्र (Centre for Science and Environment CSE) स्थापित किया।

अग्रवाल के सरोकारों की गहराई और उनका विस्तार चौंका देने वाले थे। उनकी पहली झलक द *स्टेट ऑफ इण्डियाज़ एंवायरनमेंट* 1982: *ए सिटिज़ंस रिपोर्ट* (भारत के पर्यावरण की अवस्था 1982: नागरिकों की एक रिपोर्ट) के प्रकाशित होने पर नज़र आई। इस रिपोर्ट को लिखने में पर्यावरण आन्दोलनों और उनसे जुड़े तमाम सक्रिय कार्यकर्ताओं ने उनकी सहायता की। यह एक युगान्तरकारी पुस्तक है। इसमें भारत में प्रकृति के उपयोग और दुरुपयोग की पहली बार गम्भीर समीक्षा की गई। पुस्तक में ईमानदारी और आकर्षक तरीके से भारत के पर्यावरण विनाश की असलियत को दर्ज किया गया। इस पुस्तक को बहुत सराहा गया और दुनिया की सैकड़ों पत्र-पत्रिकाओं में उसकी समीक्षाएँ छपीं!

नागरिकों की इस पहली रिपोर्ट ने संकुचित विचारधारा वाले विद्वानों, अन्धी राजसत्ता और उनींदी जनता की आँखें खोलीं। रिपोर्ट ने जैविक ईंधन व चारे आदि (biomass) के घटते प्राकृतिक स्रोत आधारित ग्रामीण अर्थव्यवस्था में महिलाओं पर पड़ते भारी बोझ का अध्ययन किया। इससे पर्यावरण और विकास के बीच रिश्ते को समझने में मदद मिली। इस रिपोर्ट द्वारा उठाए मुद्दों पर जमकर चर्चा हुई और कुछ कदम भी उठाए गए। रिपोर्ट का दूरगामी प्रभाव पड़ा। प्रसिद्ध पर्यावरणविद् शिवराम कारन्त एवं अनुपम मिश्र ने इस पुस्तक का क्रमशः कन्नड़ और हिन्दी *(देश का पर्यावरण)* में अनुवाद किया।

इसके बाद इसी प्रकार की नागरिकों की रिपोर्टें छपती रहीं। द *पॉलिटिक्स ऑफ द एंवायरनमेंट (The Politics of the Environment/ हमारा पर्यावरण)* में अग्रवाल ने जल और ज़मीन जैसे साधनों के समग्र प्रबन्धन के पक्ष में दलील दी। तीसरी रपट बाढ़ों पर केन्द्रित थी। चौथी रपट *डाईंग विज़्डम (बूँदों की संस्कृति)* में भारत में जल संवर्धन के परम्परागत तौर-तरीकों को संकलित किया गया था। यद्यपि पहली दो रपटों में जनान्दोलनों से जुड़े ज़मीनी कार्यकर्ताओं का सक्रिय योगदान था, अन्तिम दोनों रपटें सी.एस.ई. ने खुद तैयार की थीं, जो सी.एस.ई. और पर्यावरण से जुड़े ज़मीनी आन्दोलनों के बीच शिथिल होते सम्बन्धों की भी द्योतक है।

टुवर्ड्स ग्रीन विलेजेज़ (Towards Green Villages/ हरित गाँवों की ओर) में अग्रवाल ने ग्रामीण समुदायों द्वारा संसाधनों पर विकेन्द्रित नियंत्रण पर ज़ोर दिया। लोगों की सक्रिय भागीदारी से ही

भारत में प्रतिवर्ष 100 घण्टे वर्षा होती है। यदि हम इस पानी को एकत्र करना सीख लें तो इससे जलसंकट समाप्त हो सकता है।

पर्यावरण सुधरेगा और ग्रामीण विकास होगा। सी.एस.ई. ने देश में की जा रही कई महत्वपूर्ण पर्यावरण पहल – हरियाणा में सुखोमाजरी, महाराष्ट्र में रालेगण सिद्धी और राजस्थान में तरुण भारत संघ – के अनुभवों को जल-ज़मीन के मुद्दों पर समग्र रूप से काम करने वाले प्रयोगों के रूप में दर्ज किया।

अग्रवाल को इस बात पर विश्वास नहीं था कि राजनैतिक दल अथवा श्रमिक संगठन परिवर्तन के वाहक बनेंगे। इसकी बजाए उन्हें ज़मीन से जुड़े आन्दोलनों और संस्थाओं से उम्मीद थी कि वे राजसत्ता पर बदलाव के लिए दबाव डालेंगी। जब राजीव गाँधी प्रधानमंत्री बने तो उन्होंने अपने मंत्रिमण्डल के सदस्यों और वरिष्ठ नौकरशाहों के साथ अग्रवाल की एक विशेष बैठक आयोजित की जिसमें उन्होंने पर्यावरण और विकास के मुद्दों पर बात रखी। राजीव गाँधी ने महसूस किया कि प्रमुख राजनेताओं में संवेदनशीलता लाने से पर्यावरण पर कुछ सकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है।

जब वाहनों के प्रदूषण से दिल्ली की हवा बहुत ज़्यादा प्रदूषित थी और लोगों का दम घुट रहा था, उस समय अग्रवाल ने *स्लो मर्डर* (धीमा कत्ल) का प्रकाशन कर एक प्रभावशाली अभियान का सूत्रपात किया। इस रिपोर्ट में बिना लाग-लपेट के उन्होंने तेल कम्पनियों, वाहन निर्माताओं और नियामक प्राधिकरणों को दोषी ठहराकर कटघरे में खड़ा किया। इस विश्लेषण के बाद संचार माध्यमों में एक ज़ोरदार अभियान भी छिड़ गया जिसके परिणामस्वरूप सर्वोच्च न्यायालय ने प्रदूषण फैलाने वाली गाड़ियों को दिल्ली में प्रतिबन्धित कर दिया। अग्रवाल ने ठोस सबूतों और आँकड़ों के आधार पर देश के कई पूँजीपतियों और कम्पनियों को बेशर्मी से पर्यावरण प्रदूषण फैलाने के लिए ज़िम्मेदार ठहराया। उसके बाद दिल्ली के सभी सार्वजनिक परिवहन वाहनों का संघनित प्राकृतिक गैस (Compressed Natural Gas CNG) से चलने वाले वाहनों में परिवर्तन हुआ। अगर आज दिल्ली के लोग थोड़ी राहत की साँस ले पा रहे हैं तो इसका श्रेय अनिल अग्रवाल को जाता है।

अग्रवाल ने पर्यावरण के मुद्दे पर एक पाक्षिक पत्रिका *डाउन टू अर्थ (Down to Earth)* की शुरुआत भी की। इसमें *गोबर टाइम्स (Gobar*

Times) शीर्षक से बच्चों की सुन्दर लघु पत्रिका भी है। सी.एस.ई. ने अक्सर बड़ी-बड़ी कम्पनियों की मनमानी के खिलाफ ऊँची आवाज़ उठाई है और सरकार को सही नियम-कानून बनाने और उन्हें लागू करने के लिए बाध्य किया है। अनिल अग्रवाल द्वारा स्थापित सी.एस.ई. ने एक स्वतंत्र पर्यावरण प्रहरी की हैसियत से सार्वजनिक हितों के लिए बहुत प्रशंसनीय कार्य किया है।

अग्रवाल 1989 में प्रकाशित पुस्तिका *ग्लोबल वॉर्मिंग इन एन अनइक्वल वर्ल्ड (Global Warming in an Unequal World/ एक असमान दुनिया में वैश्विक ऊष्णीकरण)* के एक सह-लेखक थे। इसमें उन्होंने दिखाया कि गरीबों की आजीविका से जुड़े उत्सर्जन (emissions) – जैसे धान के खेतों से मिथेन का उत्सर्जन – धनी देशों की विलासिता के लिए उत्सर्जन यानी उनके सैन्य वाहन और अन्य उद्योगों की ज़हरीली गैसों, से सर्वथा भिन्न हैं। पश्चिम के मुल्कों ने प्रदूषणकर्ताओं को पुरस्कृत किया और उसके भुक्तभोगियों को दोषी ठहराया। पश्चिमी देश हमेशा भारत और चीन जैसे विकासशील देशों को वैश्विक तापमान वृद्धि (global warming) के लिए दोषी ठहराते हैं और उन्हें पर्यावरण स्वच्छता के लिए काम करने की हिदायत देते हैं। अग्रवाल ने इसे 'पर्यावरणीय उपनिवेशवाद' करार दिया

और पश्चिमी देशों से ग्रीनहाउस (greenhouse) गैसें पैदा करने की ऐतिहासिक ज़िम्मेदारी को स्वीकार करने का आग्रह किया। महासागरों और वायुमण्डल द्वारा ग्रीनहाउस गैसों की कुल मात्रा को कम कर देने की क्षमता को कार्बन-सिंक (carbon sink) कहते हैं। उनके अनुसार प्रत्येक देश द्वारा वर्तमान में उत्सर्जित की जाने वाली ग्रीन हाउस गैसों के अनुपात में कार्बन-सिंक को विभाजित करना मूर्खतापूर्ण है। अग्रवाल के अनुसार न्यायपूर्ण पद्धति में दुनिया के हर इन्सान को कार्बन-सिंक में बराबरी का हिस्सा मिलना चाहिए।

अग्रवाल को अपने विलक्षण काम के लिए अनेक पुरस्कार मिले। आई. आई.टी., कानपुर ने उन्हें डिस्टिंगुइश्ड एलुम्नस अवॉर्ड से सम्मानित किया। 1987 में संयुक्त राष्ट्र संघ पर्यावरण कार्यक्रम ने उन्हें ग्लोबल 500 रोल ऑफ ऑनर में सम्मिलित किया। भारत सरकार ने पर्यावरण एवं विकास पर उनके कार्य के लिए उन्हें पद्म भूषण से सम्मानित किया।

20 सालों से भी ज़्यादा अरसे तक अनिल अग्रवाल भारत के सर्वाधिक मुखर एवं प्रभावशाली पर्यावरण संरक्षण कार्यकर्ता रहे। उनमें जटिल वैज्ञानिक अध्ययन के परिणामों को पढ़कर उन्हें सरल, स्पष्ट शब्दों में बयान करने की विलक्षण क्षमता थी। वे पर्यावरण की ज्वलन्त समस्याओं को न केवल जनता के बीच उठाते थे, बल्कि एड़ी-चोटी का ज़ोर लगाकर उनका न्यायसंगत हल भी खोजते थे।

अग्रवाल दृढ़ संकल्प वाले व्यक्ति थे। एक लम्बे काल तक वे बीमारियों से जूझते रहे, शुरुआत में पुराने दमे से और फिर 1994 के बाद एक दुर्लभतम कैंसर से जिसका असर मस्तिष्क और आँखों पर होता है। अन्तिम दिनों में पलंग पर लेटे-लेटे भी उन्होंने अपने आखिरी अभियान की योजना बनाई और उसे कार्यान्वित किया। 2 जनवरी 2002 को 54 वर्ष की अल्पायु में देहरादून में उनका देहान्त हुआ।

इंडेक्स

यह इंडेक्स हिन्दी वर्णमाला के क्रमानुसार है।
किताबों व पत्रिकाओं के नाम इटैलिक्स में दिए गए हैं।

अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान 191, 192, 193, 207
अग्रवाल, अनिल 235-240
अनीमिया 103
अन्तरिक्षीय किरणें 165, 166, 167
अन्तरिक्ष विज्ञान 62, 99
अन्तरिक्ष शोध कार्यक्रम 168
अन्तर्राष्ट्रीय ओज़ोन आयोग 187
अन्तर्राष्ट्रीय भू-भौतिक वर्ष 213
अन्तर्राष्ट्रीय रेडियो व भू-भौतिक चेतावनी केन्द्र 214
अन्तर्राष्ट्रीय सूर्य वर्ष 213
अपचयन 173
अपवर्तन 28
अरुंदले, रुक्मिणी देवी 166
अर्धचालक क्रिस्टल 28
अली, सालिम 106-111
अवशोषण 184
अहमदाबाद टेक्सटाइल इंडस्ट्रीज़ रिसर्च एसोसिएशन 168
आइंस्टाइन 88, 89, 90, 91
"आकाश नीला क्यों है?" 57, 58
आगमिक तर्क (inductive logic) 203
आण्विक विखण्डन 167
आण्विक जीव विज्ञान 157
आण्विक जैव भौतिकी 195, 199
आण्विक ऊर्जा 150, 183
आनुवंशिकी 70, 71, 72, 74, 80, 140
आपेक्षकीय फील्ड सिद्धान्त 204
आयन-मण्डल 59, 61, 62, 212, 213
आयनीकरण 85
आयोडीन का अभाव 190
आर्थिक पक्षी विज्ञान 108
आर्थिक तथा व्यावहारिक वनस्पति शास्त्र 133
आवर्त सारणी 33
ऑटो हाह्न 91
ऑपरेशंस रिसर्च एसोसिएशन 168
ऑन बीइंग द राइट साइज़ 73

इंडियन चाइल्डहुड सिरौसिस 191
इंडियन जर्नल ऑफ जेनेटिक्स एंड प्लांट ब्रीडिंग 144
इंडियन जर्नल ऑफ रेडियो एंड स्पेस 216
इंडियन बॉटैनिकल सोसाइटी 129, 134
इंडियन सोसाइटी ऑफ जेनेटिक्स एंड प्लांट ब्रीडिंग 144
इंडिया इंवेंटेड 148
इग्ज़ैस्परेटिंग एसेज़ 151
इतालवी 149
इतिहास 146, 148
इब्सेन, हेनरिक 164
इलेक्ट्रोप्लेटिंग 18, 39
इलेक्ट्रॉन-पॉज़िट्रॉन प्रकीर्णन 155

उत्सर्जन 239
उपग्रह 168, 169, 213
ऊष्मा चालकता 114

एडवांसेज़ इन ऑब्स्टेट्रिक्स एंड गायनेकॉलजी 121
एडवांसेज़ इन स्पेस एक्सप्लोरेशन 216
एडिंगटन, आर्थर 161
एडिनोसीन ट्रायफॉस्फेट 102
एन इंट्रोडक्शन टू द एम्ब्रियोलॉजी ऑफ एंजियोस्पर्म्स 133
एंवायरनमेंटल कंज़रवेशन एंड डेवलपमेंट 145
एन इंट्रोडक्शन टू द स्टडी ऑफ इंडियन हिस्ट्री 147
एरोसोल 215
एवरशेड, जॉन 220

ओज़ोन 62, 186, 214
औषध निर्माता कम्पनियाँ 103
औषधीय रसायन विज्ञान 125

कंज़्युमर गाइडेंस सोसाइटी ऑफ इंडिया 175
कम्युनिस्ट पार्टी 72
कर्वे, इरावती 135-139
कलकत्ता विश्वविद्यालय 34
कलाम, अब्दुल ए.पी.जे. 169, 170
कलिलीय चुम्बकीय रसायन 97
कस्तूरीरंगन 169
कार्बन सिंक 240
कार्बनिक रसायन 231
कार्बनिक सूक्ष्म विश्लेषण 124
काले, प्रमोद 169
कॉस्ट रिडक्शन फॉर प्राइमरी स्कूल बिल्डिंग्स 180
कीमत 175
कुण्डलित कुण्डल संरचना 198
कृष्ण विवर 163
कृष्णन, करियामणिक्कम श्रीनिवास 112-116, 203
कृषि 75, 81, 108, 140, 141, 143, 144, 214, 216
कृषि अनुसन्धान 145
कृत्रिम पैर 223, 224, 225
कृत्रिम प्रजनन 72
कृत्रिमांगस्थापन शल्यचिकित्सा 226
केन्द्रीय चमड़ा अनुसन्धान संस्थान 200
केमिस्ट्री ऑफ विटामिन्स एंड हॉरमोन्स 126
कैसलमैन, डॉ. बेंजामिन 192
कोणीय ऊँचाई (angular momentum) 22
कोसाम्बी, धर्मानन्द दामोदर 48, 146-152
क्यूरी, मेरी/ क्यूरी, मदाम 60, 91
क्रेस्कोग्राफ (crescograph) 30
क्वांटम यांत्रिकी 84, 90, 114
क्वेकर 176

खगोल भौतिकी 85
खगोलिकी/ खगोल शास्त्र 149, 159, 160, 200, 218, 219, 220, 221
खनिज विज्ञान 92
खरसेदजी, अरदेसर 13-18
खेसारी 127

गणित 49, 50, 51, 52, 71, 75, 88, 89, 113, 146, 149, 150, 154, 159, 196, 201, 203, 204, 205
गणितीय दर्शनशास्त्र 199
गाईगर काउंटर टेलिस्कोप 156
गुरुत्वाकर्षण 84, 92
गेहूँ 141
गैनीमीड 222
गोबर टाइम्स 238
गोवारीकर, वसन्त 169
ग्रीक 149
ग्रीन हाउस गैस 214, 240

ग्रेट ट्रिगनोमैट्रीकल सर्वे ऑफ इंडिया 23, 24
ग्लोबल वार्मिंग इन एन अनइक्वल वर्ल्ड 239

घेंघा रोग 190

चन्द्रयान 169
चन्द्र विवर 63
चन्द्र, हरीश 156, 201-205
चन्द्रन, सुधा 228
चन्द्रशेखर, शिवरामकृष्णन 229-234
चन्द्रशेखर, सुब्रह्मण्यन 57, 155, 159-164, 222
चन्द्रशेखर सीमा 160
चिकित्सा रसायन विज्ञान 124
चिटनिस, ई.वी. 169
चुम्बकत्व 114
चुम्बकीय एकल ध्रुव 85
चेखव 164

जनसंख्या आनुवंशिकी 71
जयपुर फुट 223, 224, 226, 227, 228
जर्नल ऑफ एटमोसफियरक एंड टेरेस्ट्रियल फिज़िक्स 217
जर्मन 149, 150
जललेखी (hydrograph) 185
जहाज़ निर्माण 14
जीन 142
जीवन (विकासक्रम) 64, 71
जीवाश्म 41, 43-45, 64, 66, 67, 68, 74
जीवाश्म विज्ञान 64, 75
जीव विज्ञान 43, 71, 92, 131, 198
जीव वैज्ञानिक झिल्लियाँ 233
जीव सांख्यिकी 71, 74
जे-संग्राहक (J-receptors) 207, 208
जैव चिकित्सा 210
जैव प्रौद्योगिकी 99
जैव भौतिकी 29, 199
जैव-रसायन (विज्ञान) 102, 125, 172, 174
जैव संश्लेषण 126
जैविक ऑक्सीकरण 173
जैविक विविधता 109, 142
जोंस, हैरल्ड स्पेंसर 219
जोज़ी-ला 65
ज्योग्राफिकल 24

टाटा मूलभूत अनुसंधान संस्थान (टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ फंडामेंटल रिसर्च) 150, 151, 153, 156, 157, 158, 205
टियोरपटेरिन 104
टुवर्ड्स ग्रीन विलेजेज़ 237
टेट्राहेड्रॉन 127
टेट्रासाइक्लिन 104
ट्यूबोप्लास्टी 118
ट्रिपसिन 174
ट्रिपल हेलिक्स 200
ट्रुथ एण्ड ब्यूटी 164

ठाकुर, रवीन्द्रनाथ 88, 92, 166

डाउन टू अर्थ 238
डिराक, पी.ए.एम. 91, 203
डिराक-साहा सूत्र (फॉर्मूला) 86
डिस्कवरी ऑफ इंडिया 152
डुडजियोन, विनफील्ड स्काउट 129, 130, 134
डेकन ट्रैप 68
डेरिक, रिक्टर 173, 175
डेली एक्सप्रेस 72
डेली वर्कर 72
डैडालस 72
तन्तु क्रिया सामर्थ्य 208
तरुण भारत संघ 238
ताड़ 174
तापलेखी (thermograph) 185

तापायनिकी 114
तारा वर्णक्रम विज्ञान 220
तिब्बत 19, 20, 21, 22, 23
तिहरी कुण्डलीदार 195
तुर्गनेव 164
तॉलस्तॉय 164
त्सांगपो 22, 23
दवा 103, 105
द अपर एटमॉसफियर 62
द इलस्ट्रेटेड फ्लोरा ऑफ देहली 133
द कल्चर एंड सिविलाइज़ेशन ऑफ एंशेंट इंडिया इन हिस्टॉरिकल आउटलाइन 147
द बॉटैनिका 134
द फॉल ऑफ ए स्पैरो 109
द मैथमैटिकल थ्योरी ऑफ ब्लैक होल्स 163
द रोज़ इन इंडिया 144
द स्टेट ऑफ इंडियाज़ एंवायरनमेंट 1982: ए सिटिज़न्स रिपोर्ट 236
दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संगठन 215
दर्पना नृत्य अकादमी 168
दास, अरविन्द नारायण 148
देश का पर्यावरण 237
दोस्तोयव्स्की 164
द्रव स्फटिक 229, 231, 232, 233
द्रवगति स्थिरता 163

धवन, सतीश 157
धान 174
ध्रुवन 28
ध्वनि विज्ञान 58

नक्षत्रीय गतिकि (stellar dynamics) 162
नाचे मयूरी 228
नामजोशी, सुनीति 183
नाभिकीय ऊर्जा 86
नाभिकीय भौतिकी 85
नाभिकीय भौतिकी संस्थान 86
नीरा 174
नृशास्त्र (देखें मानव शास्त्र)
नेचर 35, 198
नेहरू, जवाहर लाल (पं.) 94, 116, 152, 156, 157, 166, 168
न्यूटन, आइज़ेक 162
न्यूट्रिशन रिसर्च लेबोरेटरी 174
न्यू यॉर्क हैरल्ड ट्रिब्यून 100

पंचशील 151
पंजाब साइंस इंस्टीट्यूट 38, 41
पटसन का ध्रुवक 28
पथ ज्यामिति 151
परमाणु ऊर्जा 156, 169
परमाणु ऊर्जा आयोग (विभाग) 98, 116, 126, 169
परिचयन (detection) 28
परिवार नियोजन संघ 122
पर्यावरण 109, 178, 235, 236, 237, 238, 240
पर्यावरण प्रदूषण 238
पर्यावरण संरक्षण 144, 235
पशु पालन 75, 143
पार्किंसन 199
पाओली, वॉल्फगैंग 91, 155, 203
पाल, बेंजामिन पियरी 140-145
पाली 148
पुच्छल तारा 219, 220
पुरातत्व (विज्ञान) 92, 138, 146
पुरा वनस्पति शास्त्र 68
पुश्चर, डॉ. वॉल्टर 192
पेंटल, औतार सिंह 206-211
पेंटल इंडेक्स 207
पेनिसिलिन 104
पोलियो 224
पॉगसन, एन.आर. 220

पॉपर, डॉ. हैंस 192
पॉलिंग, लाइनस 197
प्रकाश विज्ञान 196, 220
प्रकीर्णन 38, 56
प्रजनन जीव विज्ञान, पक्षियों का 107
प्रमाण 232
प्रतिजैविक (antibiotics) 104
प्रतिदीप्ति (flourescence) 184
प्रतिवर्त क्रियाएँ (reflex action) 208
प्रसाद, डॉ. राजेन्द्र 174
प्रसूति एवं स्त्रीरोग विज्ञान 117, 118
प्रेसिडेंसी कॉलेज (कलकत्ता/ मद्रास) 25, 26, 27, 31, 32, 34, 38, 54, 60, 83, 88, 101, 123, 124, 159, 184
प्राकृत 149
प्राकृतिक चयन 71
प्राकृतिक विज्ञान 166
प्रिंसिपिया 162
प्रोग्रेस इन गायनेकॉलजी 121
प्रोटीन-ऊर्जा कुपोषण 190
प्लाज़्मा अनुसन्धान संस्थान 200
प्लैंक, मैक्स 90

फर्मी, एनरिको 155
फाउलर, आर.एच. 155, 161
फाइटोकेमिस्ट्री 127
फाइटोमॉर्फोलॉजी 134
फॉलिक अम्ल 103
फिलोसॉफिकल ट्रांज़ैक्शन 66
फिलोसॉफिकल मैगज़ीन 84, 89, 160
फिशर, वेल्टी 177
फिस्क, सायरस 102
फिस्क-सुब्बाराव पद्धति 102
फूलचुकी 108
फ्रांसीसी 149
फ्लावरिंग श्रब्स 144
फ्लेमिंग, एलेक्ज़ैंडर 104
फ्लोरा इंडिका 65

बंगाल केमीकल्स एंड फार्मास्युटिकल्स लिमिटेड 33
बप्पू, वेणु एम.के. 218-222
बप्पू-बोक-न्यूकिर्क पुच्छल तारा 220
बया 107, 108
बसु विज्ञान मन्दिर 30
बॉम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसाइटी 109
बूँदों की संस्कृति 237
बेकर, लॉरी 176-182
बेतार (wireless) 25, 28, 61
बोरलॉग, डॉ. नॉर्मन 140
बोस-आइंस्टाइन सांख्यिकी 90
बोस, जगदीश चन्द्र 25-30, 32, 38, 41, 60, 83, 89
बोस, सत्येन्द्र नाथ 27, 32, 60, 78, 83, 84, 88-93, 114, 131
बोसॉन 27, 88, 90
ब्राह्म समाज 31, 38, 78, 98
ब्राह्मी 147, 149
ब्रेग, लॉरेंस 197
ब्यूटिफुल क्लाइम्बर्स ऑफ इंडिया 144

भटनागर, शान्ति स्वरूप 94-99
भण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट 137
भर्तृहरि 148
भाप इंजन 14, 15, 18
भाभा परमाणु अनुसन्धान केन्द्र 153, 158
भाभा प्रकीर्णन (scattering) 155
भाभा, होमी 94, 150, 153-158, 159, 183, 203, 219
भारत और पाकिस्तान के पक्षी 109
भारत का बर्डमैन 106
भारत का मृदा नक्शा 45
भारतशास्त्र/भारतविद्या (indology) 146

भारत शास्त्री (indologist) 135
भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसन्धान परिषद 126, 175, 192, 193, 207
भारतीय इतिहास 148
भारतीय कृषि अनुसन्धान केन्द्र 153
भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद 126, 143, 144
भारतीय कृषि अनुसन्धान संस्थान 141, 143, 144, 145
भारतीय तारा भौतिकी संस्थान 221, 222
भारतीय पक्षी 108
भारतीय प्रबन्ध संस्थान 168
भारतीय प्राणी सर्वेक्षण 107
भारतीय बिमारियों का पंजीयनालय 192
भारतीय भौतिकीय सोसाइटी 92
भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी 127, 188, 194, 204, 205, 211, 233
भारतीय विज्ञान अकादमी 134
भारतीय विज्ञान कांग्रेस 67, 127, 211
भारतीय विज्ञान विकास संघ 86, 115
भारतीय विज्ञान संस्थान 155, 166, 171, 172, 184, 196, 199, 203
भारतीय सांख्यिकीय संस्थान 74, 79, 80, 81
भूगोल 112
भूविज्ञान 43, 44, 45, 46, 47, 68
भोपाल गैस काण्ड 193
भौतिक अनुसन्धान प्रयोगशाला 168
भौतिकी/ भौतिक विज्ञान 27, 35, 54, 78, 84, 85, 89, 96, 112 ,113, 114, 115, 149, 154, 159, 160, 162, 171, 184, 185, 196, 197, 203, 205, 222, 223, 231

मछली पालन 143
मड (मिट्टी/ MUD) 180
मणि, अन्ना 183-188
मलेरिया 124
महात्मा गाँधी 31, 41, 101, 149, 166, 169, 177, 178, 184, 223
महाभारत 135, 137, 139
महालनोबिस, प्रशान्त चन्द्र 74, 77-81, 83, 84
मानव शास्त्री-विज्ञानी (anthropologist) 135
माय फ्रेंड मिस्टर लीकी 74
मारकोनी 28
माहेश्वरी, पंचानन 129-134
मिर्ज़ा गालिब 219
मिथ एंड रियलिटी 147
मित्रा, अशेष प्रसाद (ए.पी.) 212-217
मित्रा, शिशिर कुमार (एस.के.) 59-63, 212, 213
मीथेन 214, 239
मुदलियार एल.एल. 197
मुद्रा विज्ञान (शास्त्र) 45, 92, 146, 147
मूलभूत आनुवंशिकी स्कूल 143
मैग्सेसे पुरस्कार 227
मोनेज़ाइट 98
मॉलिक्यूलर क्रिस्टल्स एंड लिक्विड क्रिस्टल्स 233
मौसम 217
मौसम परिवर्तन 212, 215
मौसम विभाग (भारतीय) 37, 38, 185, 187
मौसम विज्ञान 183, 185, 186
मॉण्टेसरी, मारिया 166
मॉनसून एशिया एकीकृत क्षेत्रीय अध्ययन 214

यांग 162
यांत्रिकी विज्ञान 154
युगान्त 135, 137

रंगद्रव्य 126
रक्तक्षीणता 190
रक्ताल्पता, स्थाई 103
रतौंधी 191
रबिश (कचरा/ Rubbish) 180

रसायन विज्ञान 32, 34, 35, 65, 71, 92, 96, 99, 112, 113
राऊस सरकोमा 121
रामचन्द्रन, गोपालसमुद्रम एन. 195-200
रामचन्द्रन प्लॉट 198
रामन प्रभाव 56, 114
रामन शोध संस्थान 58, 171, 212, 230, 231, 233
रामन (सी.वी.) 35, 53-58, 60, 113, 159, 166, 168, 171, 172, 184, 195, 196, 197, 202, 203, 218, 230
रामानुजन इंस्टीट्यूट ऑफ मैथमैटिक्स 163
रामानुजन के नोटबुक 50
रामानुजन, श्रीनिवास 48-52, 163
रामानुजन संख्या 52
रामलिंगास्वामी, वूलिमिरी 189-194
रालेगण सिद्धि 238
राव, यू.आर. 169
रावत, नैन सिंह 19-24
राष्ट्रीय आयोडीन अभाव नियंत्रण कार्यक्रम 190
राष्ट्रीय चिकित्सा विज्ञान अकादमी 194
राष्ट्रीय डिज़ाइन संस्थान 168
राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण 80
राष्ट्रीय पर्यावरण संरक्षण एवं संयोजन समिति 144
राष्ट्रीय पादप आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो 142
राष्ट्रीय भौतिकी प्रयोगशाला 98, 115, 116, 213, 214
राष्ट्रीय रासायनिक प्रयोगशाला 98
राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी 87, 204
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद 134
रासायनिक प्रौद्योगिकी 125
रासायनिक संश्लेषण 124
रिवीज़न ऑफ इंडियन गोंडवाना प्लांट्स 66
रूरल कम्यूनिटी बिल्डिंग्स 180
रेडियो इलेक्ट्रॉनिकी 61
रेडियो तरंग 61, 213, 214
रेडियो दूरबीन 157
रेडियो विज्ञान 59, 213
रेडियो संचार 62
रेडियो सम्प्रेषण 61
रे, प्रफुल्ल चन्द्र 31-35, 38, 60, 83, 88
रैट-ट्रैप बन्धन 179

ली 162
लीडर 95
लैंग, एच. 197
लैटिन 149
लैसवंस टैक्स्टबुक ऑफ बॉटनी 66
लिक्विड क्रिस्टल्स 233
ल्हासा 21, 22, 23

वनस्पति आकृति विज्ञान 130
वनस्पति प्रजनक (plant breeder) 140
वनस्पति भ्रूण विज्ञान 132
वनस्पति शास्त्र (विज्ञान) 25, 66, 67, 132, 133, 141
वर्णक्रम, तारों का 84
वर्णक्रम-मापी 56, 85
वर्णक्रम रेखाएँ 85
वर्णक्रमलेखी 219, 220
वर्णक्रमिकी (विज्ञान) (spectroscopy) 184, 213
वाडिया, दाराशॉ नौशेरवान 42-47
वाडिया हिमालय भूविज्ञान संस्थान 45
वातावरणीय रसायन विज्ञान 214
वान-गॉग, विनसेंट 204
वायरस रिसर्च सेंटर 121
वार्ड, बारबरा 236
वास्तुशिल्प/वास्तु शास्त्र 180
वास्तुशिल्पी 176, 177, 178, 180, 181
वॉल्फ-रैयत 220

विकृति विज्ञान 191, 192
विक्रम साराभाई स्पेस रिसर्च सेंटर 169
विटामिन 191
विटामिन बी-12 103
विद्युत चुम्बकीय बल 92
विवर्तन (diffraction) 28, 60
विश्वभारती 92
विश्वविद्यालय अनुदान आयोग 98, 116, 128, 143
विश्व शान्ति आन्दोलन 151
विज्ञान एवं औद्योगिक अनुसन्धान परिषद 87, 98, 99, 116
विज्ञान एवं औद्योगिक अनुसन्धान बोर्ड 97
विज्ञान का लोकव्यापीकरण 36, 40
वेणु बप्पु वेधशाला 222
वैश्विक तापमान विधि 239
वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसन्धान परिषद 214
व्यतिकरण (interference) 60
व्हूस्टर, डब्ल्यू.ए. 197

शक्करखोरा 108
शरलॉक, डॉ. शीला 192
शरीर क्रिया विज्ञान 70, 89, 102, 206, 207, 208, 209, 210, 211
शल्यक्रिया 117, 118, 119, 120
शल्य चिकित्सक 224
शाएर, ई.एस. 167
शॉ, बर्नार्ड 164
शान्ति निकेतन 92
शारीरिक मानव शास्त्र 138
शासकीय महाविद्यालय, लाहौर 41
शिरोडकर ऑपरेशन 121
शिरोडकर, विट्ठल नागेश 117-122
शिरोडकर स्टिच (टाँका) 117
शेक्सपीयर 164, 189
शेपलि, हारलो 219
शेषाद्री, टी.आर. 123-128
शैल-विज्ञान 45
शैवाल 126
श्वेत वामन 160
संघनित प्राकृतिक गैस (सी.एन.जी.) 238
संस्कृत 149
सकल प्राकृतिक उत्पाद 235
समाजशास्त्र 136, 137
सन्दीप्ति (luminiscence) 185
सलेटी खंजन 110
सर्वेक्षण नमूना तकनीक 78
सर्वाइकल सर्कलेज 119
सांख्य 79
सांख्यिकी 70 75, 77, 78, 79, 80, 81, 146, 147, 193
साइंस 102
साइंस एंड कल्चर 86
साइक्लोट्रॉन 86
साइबरनेटिक्स 29
सापेक्षता का सिद्धान्त 84, 89, 163
सामाजिक विज्ञान 144
सामुदायिक विज्ञान केन्द्र 168
सायटोक्रोम सी 173
सायबरनेटिक्स 80
साराभाई, विक्रम 94, 157, 165-170, 187
साराभाई विवर 170
साहनी, बीरबल 64-69, 131
साहनी, रुचिराम 36-41
साहा, मेघनाद 32, 60, 78, 81-87, 89, 131
सिद्दिकी, ओबेद 157
सुखोमाजरी 238
सुजनन विज्ञान 72
सुब्बाराव, येल्लाप्रगदा 100-105
सूक्ष्मदर्शी 130
सूक्ष्मकर्तक (microtome) 130

सेंटर फॉर लिक्विड क्रिस्टल रिसर्च 233
सेंटर फॉर साइंस एंड एंवायरनमेंट (सी.एस.ई) 236
सेठी, प्रमोद कर्ण (पी.के.) 223-228
सेज़ान 204
सैटेलाइट इंस्ट्रक्शन टेलीविज़न एक्सपेरिमेंट 169, 213
सैटेलाइट कम्युनिकेशन सेंटर 169
सोलर रेडिएशन ओवर इंडिया 187
सोसाइटी फॉर साइंटिफिक वैल्यूज़ 209
सोहोनी, कमला 171-175
सौर भौतिकी वेधशाला 113
सौर व पवन ऊर्जा 150, 183, 186, 187
स्टोरी ऑफ ए स्टोन 47
स्ट्रांग, रिचर्ड 102
स्थाई रक्ताल्पता 103
स्पूतनिक विज्ञान 62
स्पेस साइंस एंड टेक्नॉलॉजी सेंटर 169
स्पेस साइंस रिव्यूज़ 217
स्फटिकी 197
स्लो मर्डर 238
स्वरूप, गोविन्द 157

हड्डी रोग 224
हमारा पर्यावरण 237
हरित क्रान्ति 142, 143
हरीश चन्द्र शोध संस्थान 205
हाइज़ेनबर्ग 91
हाइटलर, वॉल्टर 155
हाऊ टू रिड्यूस बिल्डिंग कॉस्ट 180
हार्डी, थॉमस 164
हाल्डेन, जॉन बर्डन सैंडरसन/ हाल्डेन जे.बी.एस. 70-76, 77, 80, 110
हिन्द महासागर प्रयोग 216
हिन्दुस्तान टाइम्स 236
हिमालय 19, 20, 44, 45, 68, 126, 178, 215
हिल, डॉ. रॉबिन 173
हिस्ट्री ऑफ केमिस्ट्री इन एंशिएंट एंड मिडीवल इंडिया 34
हुसेन, मकबूल फिदा 158
हैंडबुक ऑफ सोलर रेडिएशन डेटा फॉर इंडिया 187
हैमंस, सी. 208
ह्यूमन इफेक्ट ऑन एटमोसफियरिक एंवायरनमेंट 216
क्ष-किरण प्रकीर्णन 230
क्ष-किरण विवर्तन 57, 198
क्ष-किरण स्थल निरूपण (x-ray topography) 196
क्ष-किरण स्फटिकी/ क्रिस्टलिकी 92, 198
त्रिविम रसायन विज्ञान (stereochemistry) 198

ज्ञान और विज्ञान 93

एकलव्य

एकलव्य एक स्वैच्छिक संस्था है जो पिछले कई वर्षों से शिक्षा एवं जनविज्ञान के क्षेत्र में काम कर रही है। एकलव्य की गतिविधियाँ स्कूल में व स्कूल के बाहर दोनों क्षेत्रों में हैं।

एकलव्य का मुख्य उद्देश्य ऐसी शिक्षा का विकास करना है जो बच्चे से व उसके पर्यावरण से जुड़ी हो; जो खेल, गतिविधि व सृजनात्मक पहलुओं पर आधारित हो। अपने काम के दौरान हमने पाया है कि स्कूली प्रयास तभी सार्थक हो सकते हैं जब बच्चों को स्कूली समय के बाद, स्कूल से बाहर और घर में भी, रचनात्मक गतिविधियों के साधन उपलब्ध हों। किताबें तथा पत्रिकाएँ इन साधनों का एक अहम हिस्सा हैं।

पिछले कुछ वर्षों में हमने अपने काम का विस्तार प्रकाशन के क्षेत्र में भी किया है। बच्चों की पत्रिका *चकमक* के अलावा *स्रोत* (विज्ञान एवं टेक्नॉलॉजी फीचर्स) तथा *शैक्षणिक संदर्भ* (शैक्षिक पत्रिका) हमारे नियमित प्रकाशन हैं। शिक्षा, जनविज्ञान एवं बच्चों के लिए सृजनात्मक गतिविधियों के अलावा विकास के व्यापक मुद्दों से जुड़ी किताबें, पुस्तिकाएँ, सामग्रियाँ आदि भी एकलव्य ने विकसित एवं प्रकाशित की हैं।

वर्तमान में एकलव्य मध्य प्रदेश में भोपाल, होशंगाबाद, पिपरिया, हरदा, देवास, इन्दौर, उज्जैन, शाहपुर (बैतूल) व परासिया (छिन्दवाड़ा) में स्थित कार्यालयों के माध्यम से कार्यरत है।

इस किताब की सामग्री एवं सज्जा पर आपके सुझावों का स्वागत है। इससे आगामी किताबों को अधिक आकर्षक, रुचिकर एवं उपयोगी बनाने में हमें मदद मिलेगी।

सम्पर्कः books@eklavya.in

ई-10, शंकर नगर, बीडीए कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल - 462 016